तीसरा अध्याय

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के कथा-साहित्य में इतिहास - संस्कृति एवं मिथक

उपन्यास तथा कहानियाँ साहित्य का अभिन्न अंग है| इन साहित्यिक विधाएँ, मनोरंजन के साथ-ही-साथ समाजोपयोगी तत्वों को भी लेकर आगे चलता है| आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, उपन्यास को मानव जीवन की व्याख्या का सर्वोतम साधन मानते हैं| उनका कहना है कि "उपन्यास तथा कहानियाँ आज के ज़माने में बहुत शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक साहित्यांग समझे जाते है|"[1] उनके अनुसार "उपन्यास स्थायी साहित्य है| वह इसलिए कि उसके लेखक का एक अपना जबर्दस्त मत है, जिसके विषय में उसका पूर्ण विश्वास है| यह वैयक्तिक स्वाधीनता उपन्यास का सर्वोतम गुण है| यह वैयक्तिक स्वाधीनता ही उपन्यासों का आदर्श है|"[2] वे लिखते हैं कि "उपन्यासकार, उपन्यासकार है ही नहीं, यदि उसमे वैयक्तिक दृष्टिकोण न हो और अपनी विशेष दृष्टि पर उसे पूरा विश्वास न हो|"[3]

आचार्य द्विवेदी अपने चार उपन्यासों के माध्यम से भारतीय संस्कृति को बनाए रखने का प्रयास किया है| 'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'चारुचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' ये सभी आपके पाण्डित्य एवं भिन्न विषयों के गंभीर अध्ययन के प्रतीक है| इन चारों उपन्यासों में संस्कृति के साथ ही साथ इतिहास के चार काल खंडों को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है| इन उपन्यासों में अतीत के आख्यानों और मिथकों के साथ आधुनिक यथार्थ का तालमेल बनाये रखने की अत्भुत सिद्धि प्राप्त है|

आचार्य द्विवेदी की कालजयी सृजन श्रृंखला में उनके चारों उपन्यासों की आधारशिला भारतीय सांस्कृतिक चेतना ही है| सजग साहित्य शिल्पी होते हुए आपने, अपने उपन्यासों में भारत के अतीत सांस्कृतिक वैभव का चित्रण तो किया ही

[1] साहित्य सहचर, द्विवेदी, पृ : 102-103

[2] साहित्य सहचर, द्विवेदी, पृ : 101

[3] साहित्य सहचर, द्विवेदी, पृ : 178

है, साथ ही साथ मानव समाज की अधुनातन समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किए है| ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए इन उपन्यासों में आधुनिक जीवन की उलझी हुई समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किए हैं|

डॉ. प्रेम प्रकाश भट्ट का कहना है कि "उनके उपन्यासों में एक सुचिंतित छंद के आवरण में आधुनिक युग की विसंगत समाज व्यवस्था, राजनैतिक छल प्रपंच, हिंसा, बर्बरता तथा मूल्य विमूढ़ मानसिकता के बीच मार्ग खोजती हुई अस्मिता की तलाश दिखाई देती है|"[4]

द्विवेदी का मत है कि "आधुनिक उपन्यास कथा मात्र नहीं है, और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओ की भांति कथासूत्र का बहाना लेकर उपमाओं, रूपकों, दीपकों और श्लेषों की छटा दिखाने का कौशल भी नहीं है| यह आधुनिक वैयक्तिकवादी दृष्टिकोण का परिणाम है|"[5]

आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों की आत्मा परंपरा और संस्कृति है| इस पर विचार करते हुए प्रसिद्ध समीक्षक नामवरसिंह ने लिखा है कि "आधुनिक हिन्दी साहित्य में अपनी भारतीय परंपरा का ऐसा अंतरंग जानकार द्विवेदी के सामान दूसरा नहीं हुआ| भारत की संस्कृति उनके लिए केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि आत्मा का स्पंदन है| भारतीय संकृति द्विवेदी के लिए 'तब' और 'वहाँ' की चीज नहीं है, बल्कि 'अब' और 'यहाँ'का जीवन अनुभव है|"[6]

आचार्य हज़ारी प्रसद द्विवेदी साहित्य जगत के श्रेष्ठ रचनाकार हैं| वे भारतीय संस्कृति के आख्याता, संस्कृति के प्रवर्तक, संस्कृति के निर्माता एवं संस्कृति संपन्न

[4] मधुमती पत्र 1980 मई, पृ : 7

[5] हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, द्विवेदी, पृ : 413

[6] साप्ताहिक हिन्दुस्तान, जून 1979, पृ : 14

लेखक है| संस्कृति के साथ ही साथ इतिहास के पक्ष को उजागर करके, उन्होंने अपनी रचनाओं का सौन्दर्य बढाया है| व्यापक अध्ययन,गहन चिंतन, मानवीय सरोकार, सांस्कृतिक निष्ठा, इतिहास बोध, सृजनशील कल्पना, ललित भाषा और उदात्त शैली के कारण द्विवेदी की कृतियाँ अन्यतम हैं| उनके उपन्यासों में इतिहास बोध और सांस्कृतिक चेतना के समन्वय से भारतीय संस्कृति के तात्विक स्वरूप को सगुण साकार करने का सार्थक प्रयास किया गया है| संवेनशील सांस्कृतिक मूल्यों और इतिहास सिद्ध उज्जवल परंपराओं के साक्ष्य पर वर्त्तमान युग की मानवतावादी दृष्टि को विकसित करके स्वस्थ और सुसंस्कृत समाज की रचना द्विवेदी का मुख्य लक्ष्य है| इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपनी रचनाओं में मिथकीय कथाओं तथा पात्रों का समावेश भी उन्होंने किया है| उनके उपन्यासों भारतीय संस्कृति और रचनात्मक इतिहास के अक्षय कोष है|

बाणभट्ट की आत्मकथा

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कुल चार उपन्यासों की रचना की है| इनमे बाण भट्ट की आत्मकथा उनका प्रथम उपन्यस है जिसका प्रकाशन सन् 1940 में हुआ था| इसका बाण भट्ट स्वयं द्विवेदी ही सिद्ध होता है और वही इस उपन्यस का मुख्य पात्र है|

उपन्यस की शुरुआत बाणभट्ट के आत्म परिचय कथन से होती है| बाणभट्ट की प्रसिद्धि इसी नाम से है, लेकिन यह उसका वास्तविक नाम नहीं है| उसका जन्म वात्स्यायन वंश में हुआ था| उसके पूर्वजो के घर यज्ञ धूम से निरंतर धूमायित रहते थे| उसके पिता पर माँ सरस्वती की कृपा थी| उसके पिता चन्द्रभानु भट्ट के ग्यारह भाई थे| बाण भट्ट ने उनमें से सबको नहीं देखा था| उसका जन्म होते ही उसकी माँ की मृत्यु हो गई| चौदह वर्ष की उम्र में उसके पिता का देहांत हो गया| उन्हें अपने चचेरे भाई उड़ुपति भट्ट का स्नेह अधिक मिला| उड़ुपति अपने समय के विद्वान

थे|शास्त्रार्थ में उन्होंने वसुभूती नामक बौद्ध भिक्षु को परास्त किया था| अपने माँ-बाप की मृत्यु के बाद बाण भट्ट इधर उधर घूमता रहा| अपने इस भटकाव के कारण वह कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखता, कभी नाट्य मण्डली संगठित करता, और कभी पुराण वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता| अपना कुछ लक्ष्य न होकर वह तरह तरह के मार्ग पर चला और जीने के लिए उसने कोई कर्म नहीं छोड़ा|

एक बार वह घूमते घूमते स्थानीश्वर पहूँच गया| नगर में पहुँचने पर बड़ी धूमधाम देखी| उसे पता चला कि सम्राट हर्षवर्धन के छोटे भाई कुमार कृष्णवर्धन के घर पुत्र जन्मोत्सव मनाया जा रहा है| सही मौका पाकर, उचित पुरस्कार प्राप्ति की आशा में वह बधाई देने के लिए कुमार के महल की ओर चल पड़े| रास्ते में उसे निपुणिका मिली, जो उसकी नाट्य मण्डली में अभिनय किया करती थी| नाट्य मण्डली से भाग आने के बाद यहाँ वह पान की दूकान चलाकर अपना जीवन यापन कर रही थी| वह छोटे महाराज के महल में पान पहूँचाया करती थी| निपुणिका बाण से बतलाती है कि मौखरी वंश के छोटे महाराजज के घर में आप एक महीने से एक साध्वी राजकुमारी अपनी इच्छा के विरुद्ध बंदिनी बनी हुई है| बाण, स्त्री शरीर को देवमंदिर माननेवाला है और इसलिए ही वह उसका उद्धार चाहता है| बन्दिनी राजकुमारी परम प्रतापी देवपुत्र तुंवर मिलिन्द की पुत्री भट्टिनी थी| बाणभट्ट और निपुणिका की सहायता से भट्टिनी वहाँ से निकलने में सफल होती है| आचार्य सुगतभद्र की कृपा तथा कुमार कृष्णवर्धन की सहायता से वे मगध के लिए प्रस्थान करते हैं| चण्डी मण्डप में बाण भट्ट की भेंट महामाया अघोर भैरव से होती है| अघोर भैरव के मुँह से उसे भविष्य के संकटों का भी आभास हो जाता है|

गंगा में जाती हुई नौका चरण दुर्ग से आगे बढ़ी तो आभार सामंत ईश्वरसेन के सैनिकों ने नौका पकड़ने का प्रयत्न किया| मौखरी वीरों का, ईश्वर सेन के सैनिकों से

युद्ध छिड़ गया| इसी बीच भट्टिनी अपने आराध्य देव महावराह की मूर्ति के साथ नदी में कूद पड़ी| उसे बचाने के लिए पहले निपुणिका और फिर भट्ट भी कूद पड़े| वे भट्टनी को बचाने में सफल रहे| वज्र तीर्थ, गंगा और महासरयु के संगम पर स्थित देवी स्थान पर रात्रि में साधक लोग अपनी साधना के लिए आया करते थे| अघोरघंट और चण्डमण्डना द्वारा बाण भट्ट की देवी के समक्ष बलि होनेवाली थी कि भट्टिनी और निपुणिका के साथ महामाया पहूँचकर उसकी प्राण रक्षा की और उसे अघोर भैरव की शरण में ले गई| तांत्रिक अभिचार की वजह से निपुणिका कई दिनों तक और बाणभट्ट तीन दिनों तक संज्ञाहीन रहे| चेतना लौट आने पर उन्होंने स्वयं को भद्रेश्वर दुर्ग के आभार सामंत के लोरिकदेव के घर में पाया| स्वस्थ होने पर बाण अकेले कुमार कृष्ण वर्धन से मिलने के लिए स्थाणीश्वर पहुँचे| पहले राजसभा में उनकी उपेक्षा हुई, लेकिन कुमार के प्रयास से वह राज कवि नियुक्त हो गए| वहीं पर उनकी भेंट निपुणिका की सखी सुचरिता से हुई| सुचरिता वहाँ उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रही थी| वह वेंकटेश भट्ट के नए धर्म में दीक्षित होकर अपने सन्यासी पति विरतिवज्र को पति रूप में प्राप्त कर गृहस्थाश्रम में वापस आई| लेकिन ढोंगी पंडित वसुभूती के संकेत पर, उसका दोस्त घनादत्त द्वारा लगाए गए घृण के आरोप के कारण वह बंदी बना ली गई थी| बाण भट्ट अन्ततः बंदी दम्पति को मुक्त कराने में सफल हुआ| उसी समय आचार्य भुर्वुशार्मा के पत्र से पता चला कि देश की भीतरी स्थिति चिंतनीय हो गई है| दस्युओं के आने की संभावना फिर से बढ़ गई है जिसे रोकने केलिए देवपुत्र तूंवर मिलिन्द की सहायता आवश्यक थी| उधर देवपुत्र अपनी पुत्री के अपहरण से क्षुब्ध एवं दुखी थे| तूंवर मिलिन्द की सहानुभूति प्राप्त करने तथा उनसे मित्रता बनाने के लिए कुमार ने भट्टिनी को स्थानिश्वर लाने के लिए राजी कर लिया| भट्टिनी को तूंवर मिलिन्द की कन्या जानकर लोरिकदेव ने उसका सम्मान किया| कुमार कृष्णवर्धन के निमंत्रण पर जहाँ निपुणिका उत्तेजित हो जाती है, वहाँ

भट्टिनी संयम से काम लेती है| अंत में यह तय होता है कि लोरिकदेव के एक सहस्र सैनिकों के साथ भट्टिनी स्वतंत्र साम्राज्ञी के समान स्थानीश्वर से एक कोस दूरी पर अपने स्कंधावार में रहेगी|

स्थानिश्वर आने पर बाणभट्ट, भट्टिनी और निपुणिका को राज्योचित सम्मान मिला| महाराज हर्ष और भाई शर्मा के स्कंधावार आने के अवसर पर बाण भट्ट ने महाराजा हर्ष द्वारा लिखित रत्नावली नाटिका के अभिनय की व्यवस्था की| अभिनय के लिए पात्रों के रूप में चारुस्मिता रत्नावली की, निपुणिका वासवदत्ता की, और बाण भट्ट स्वयं राजा की भूमिका में उतरे| इस अभिनय के साथ ही निपुणिका का जीवन समाप्त हो जाती है| जीवन का यह वास्तविक अभिनय देखकर भट्टिनी अचेत हो जाती है| हृदय पर पत्थर रखकर बाण भट्ट ने निपुणिका की अन्त्योष्टि क्रिया की| निपुणिका के वियोग के बाद आचार्य भर्वुपाद भट्टिनी को स्थानिश्वर में ही छोड़कर बाण भट्ट को पुरुषपुर जाने की आज्ञा देते है| भट्टिनी का चेहरा विवर्ण हो जाता है, वह दुःख के साथ कहती है, 'जल्दी लौटना'| बाण भट्ट विह्वल हृदय से कहता है 'फिर क्या मिलन होगा'? बाण भट्ट की आत्मकथा यहीं पर समाप्त हो जाता है|

चारुचन्द्र लेख

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित चारुचन्द्र लेख नामक उपन्यास की रचना सन् 1963 में हुआ| इसमें 12वीं तथा 13वीं शताब्दी का चित्रण हुआ है| इस उपन्यास में चंद्रलेखा और राजा सातवाहन प्रमुख पात्र हैं| उज्जयिनी से कोई पचास मील दक्षिण की ओर एक गाँव में कोई सिद्ध पुरुष आये हुए थे| राजा सातवाहन उनसे मिलने गए| गाँववालों ने उन्हें समझाया कि यह पुरुष सीदी मौला है, जो कई जगहों में घूमकर अब लौटे है|

सिद्ध पुरुष की खोज में जाते हुए राजा सातवाहन को रास्ते में एक विचित्र वेशधारी साधु मिले, जो स्वयं को दरवेश कहते थे| उसने राजा सस्वमनिया अर्थात लक्ष्मणसेन की जन्म कथा सुनाई| जब लखमनिया राजा के गर्भ में था, तब उसके पिता की मृत्यु हो गई| राजमुकुट उसकी माता के पेट पर रख दिया गया| सब लोग उसकी माता की आज्ञा को राजाज्ञा समझकर सम्मान दिया करते थे| जब प्रसव काल निकट आया तो ज्योतिषियों ने बताया कि यदि इस समय इसका जन्म होगा तो बड़ा अशुभ होगा, यदि दो घड़ी बाद होगा तो शुभ होगा, उस समय बालक अस्सी बरस तक अखण्ड राज्य का अधिकारी होगा| यह सुनकर माता ने शुभ मुहूर्त आने तक दोनों पैर बाँधकर उसे उल्टा लटका दिया| शुभ मुहूर्त में जब उसको सीधा लिटाया गया तब लखमनिया का जन्म हुआ|

राजा द्वन्द्वात्मक स्थिति में शिव मंदिर के पास बरगद के पेड़ के नीचे आसन बिछकर बैठ जाते है और सोचने लगते है कि सीदी मौला की खोज में दक्षिण की ओर जाना चाहिए अथवा नहीं| उन्हें नींद आ जाती है और स्वप्न में देखते हैं कि कोई रूक्ष वेश धारी तापस उन्हें जगा रही है| नींद खुली तो सचमुच वही साधू खड़ा था| उसने राजा से निद्रा में समय न गवाने और पश्चिम की ओर घोडा दौड़ाने के लिए कहा| सीदी मौला नहीं मिलेंगे तो सीदी देवी मिलेगी| फिर श्लेष का अर्थ स्पष्ट करते हुए तपस्वी ने कहा कि सीदी से भेंट नहीं होगी लेकिन सिद्धि उसकी प्रतीक्षा कर रही है| तपस्वी ने राजा से विलंब न करने के लिए कहा|

राजा सातवाहन ने अपना घोडा पश्चिम की ओर दौड़ाया| मार्ग में एक मृगशावक को पकड़ने के प्रयास से कृषक बालिका चंद्रलेखा से मुलाकात हुई| चंद्रलेखा नागनाथ के लिए एक हाथ में चाँदी की थाली में भोजन और दूसरे हाथ में भृंगार लेकर उसे ढूँढने निकली थी| नागनाथ चंद्रलेखा के आग्रह पर उसके घर

भोजन करने गया था| वह तापस था| गाँववालों को उस पर संदेह हुआ| उन लोगों ने उसे पाखण्डी समझकर उसे मार-पीट कर भगा दिया| अपने हाथों का तैयार किया भोजन कराने के उद्देश्य से ढूँढते हुए चंद्रलेखा सातवाहन से मिली| उसने राजा सातवाहन से कहा कि तुम्हारे पास घोडा है, तुम तापस को ढूँढने में मदद करो| राजा ने कहा मेरे साथ घोड़े पर मेरी रानी ही बैठ सकती है, इस पर चंद्रलेखा ने कहा कि मुझे रानी बना लो| राजा ने चंद्रलेखा को रानी के रूप में स्वीकार किया| राजधानी वापस लौटने पर राजा व रानी चंद्रलेखा का भव्य स्वागत हुआ| उसी दरम्यान रानी का तापस नागनाथ भी मिल गया|

विद्याधर भट्ट सातवाहन के मंत्री है| राजा उनका अदब करते हैं| वे ज्योतिष विद्या भी जानते हैं| मंत्रीवर बड़े स्वाभिमानी व्यक्ति हैं| उन्होंने रजा को राज्य के प्रति अपने कर्तव्य का एहसास कराया और आग्रह किया कि राजा कहीं रानी के प्रेम में डूबकर अपने दायित्व को न भूल जायें| इस संदर्भ में उन्होंने अपने अतीत की कथा सुनाई कि वे पहले काशी कान्यकुब्जेश्वर महाराज जयित्रचंद्र के मंत्री थे| रानी के 'अहं' ने उन्हें काशी छोड़ने पर विवश कर दिया| विद्याधर भट्ट ने सदैव राज्य व राज्यहित के बारे में सोचा, अतः उन्हें रानी के कोप का भाजन बनना पड़ा| मुहम्मद गोरी आसानी से काशी कान्यकुब्ज के राज्य को अपने कब्जे में ला सका| विद्याधर भट्ट ने अपने अतीत की कथा महाराज सातवाहन को सचेत करने के लिए ही सुनाई|

एक दिन राजा सातवाहन सीदी मौला को ढूँढने में सफल रहे| सीदी मौला के व्यक्तित्व ज्ञान व संस्मरण आदि ने राजा को प्रभावित किया| सीदी मौला ने मंगोल के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश का वर्णन किया| सीदी मौला से भेंट होने के पश्चात् राजा राजधानी पहुँचे| राजा, रानी के साथ आसपास के जनपदों में आम जनता से संपर्क साधते हुए निकले, जिसका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा|

नागनाथ कोटिवेधी रस सिद्ध करना चाहते थे इसके लिए उन्हें बत्तीस लक्षणों से युक्त स्त्री की आवश्यकता थी| चंद्रलेखा बत्तीस लक्षणों से युक्त थी| रानी चंद्रलेखा राजा सातवाहन की अनुमति लेकर चली गई| नागनाथ को यह विश्वास था कि पार्श्वनाथ के पादमूल में बैठने से कोटिवेधी रस की सिद्धि हो जाएगी, जो संसार को रोग-शोक, दुःख-दारिद्रिय, जरा-मरण आदि विपत्तियों से मुक्ति दिला सकता है| रानी को धीरे धीरे संसार से विरक्ति हो जाती है| इधर तुर्कों का आक्रमण होता रहा| इसी बीच दिल्ली के सुलतान की फ़ौज भी टूटने लगी| अर्थात मैनसिंह ने, जो स्त्री है, पुरुष वेश में राजा की बड़ी सहायता की| उसने स्वयं के प्रयासों से ग्रामीण सेना को संगठन किया और तुर्कों को मार भगाया| उसके मन में राजा के प्रति प्रेम के अंकुर फूटे, वह सात्विक प्रेम था| चंद्रलेखा को वह दीदी कहती थी| उसने चंद्रलेखा को सिद्धियों के जाल से निकालकर, राजा को सौंप देने का संकल्प किया| वह प्रसिद्ध नर्तकी कारूनटी की पालिता पुत्री है जो जयीत्रचंद की राजसभा में प्रसिद्ध नर्तकी थी| भ्रष्ट सामाजिक कुरीतियों तथा षड्यंत्रों से माता क्षुब्ध थी| अतः वे कृष्ण भक्ति में लीन होकर एकांत में रहने लगी| राजा उसके साथ ही दूसरी साध्वी विष्णु प्रिया से भी परिचित हुए|

इसी बीच घुण्डकेश्वर स्वामी के बहकावे में राजा के भाई दोनों पुत्र आ गए और उन्होंने जब कोटि वेधी रस सिद्ध हो चुका था, तब नागनाथ की हत्या कर दी| रस के स्पर्श से चंद्रलेखा में उड़ने की शक्ति आ गई| वह नागनाथ के शव को लेकर आकाश में उड़ने लगी| आकाश मार्ग से जाते समय उसे चंद्रगिरी की ऊँची चोटी पर अनंगवज्र के दर्शन हुए| अनंगवज्र ने उसे नालंदा नागरी के महाविहार जाने को कहा| बहन उनके भाई अमोघवज्र जो परम सिद्ध है उनसे गोरखनाथ का संधान मिलेगा|

ओदंतपुरी से पन्द्रह योजन दूर एक पार्वत्य गुफा में अमोघ वज्र कुमारिका पूजा कर रहे थे| वहाँ पर रानी की मुलाकात तापस बाला से हुई| उसने अपनी कहानी रानी को सुनाई| अमोघवज्र ने रानी चंद्रलेखा को तारादेवी का ध्यान करने के लिए कहा ताकि उन्हें शांति मिल सकें| भिसिल्पाद ने बतलाया कि सारनाथ के महाविहार पर तुर्कों ने आक्रमण कर दिया है और सभी लोग भाग खड़े हुए है| चारों ओर भ्रमण करने के बाद रानी की मुलाकात मैना से हुई| मैना ने नारी माता और विष्णु प्रिया से उनका मिलन कराया| उनके उपदेश और उपचार से रानी अपनी स्वाभाविक अवस्था में आती है| इसी बीच दिल्ली के सुलतान से विरोध होने पर शांत राजपुरुष से मिलने के लिए सातवाहन बद्रीनाथ की एक गुप्त उपत्यका में जाते हैं| भैरवपाद एक तपस्वी की मानस पुत्री भद्रकाली का, शाह ने बख्तियार हुसैन के आक्रमण के समय अपहरण कर लिया था| उसके बाद भद्रकाली राजमहिषी बन गई| भैरवपाद के अपहर्ता को खोजकर दण्ड दिलवाना चाहते थे| तारपीड में देवि दर्शन के समय अक्षोभ्य भैरव ने अशोकचल से कहा कि अपना सारा राजपाट राजा को दे दो| भद्रकाली का उद्धार और तुर्क सेनापति का शिरोच्छेदन भी इस आदेश में सम्मिलित था| इन तीनों आदर्शों के पालन में शाह को दण्ड देना भी था| उसका संधान पाने पर मैना ने अपने कुंत से शाह को धराशायी कर दिया| राजा बोधा हाय हाय करते रहे, लेकिन जो होना था वह हो गया| अशोक चल्ल को दिए वचन पूरे हुए| बोधा प्रधान की कूटनीति सफल हुई| अक्षोभ्य भैरव की नीलतारा का साधना चरितार्थ हुई और मैना की प्रतिज्ञा भी पूरी हुई| तत्पश्चात अपनी गलती समझकर मैना ने प्रायश्चित करने अपने सीने में भाला भौंक लिया| मैना रानी की गोद में गिर पड़ी| महाराज से मिलने के लिए व्याकुल रानी का यही मिलन हुआ| उसके बाद बोधा ने मैना के आहत शारीर को उठा लिया और कहा कि जल्दी महाराज, जल्दी भागिए| यहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है|

पुनर्नवा

द्विवेदी का उपन्यास 'पुनर्नवा' उनकी औपन्यासिक यात्रा में एक नये मोड़ को लेकर साहित्य पथ पर आई हुई रचना है| इसका प्रकाशन 1973 में हुआ था| यह रचना अपने कंचुल से निकलकर, फिर से नवीन दृष्टि को लेकर आई है जैसे कि उसके शीर्षक के शाब्दिक अर्थ से ही यह बात स्पष्ट होती है| इस नई दृष्टी ने लारिक चन्द्र की प्रसिद्ध लोक गाथा शूद्रक-कृत 'मृच्छकटिक' की कहानियाँ और कालिदास की लोकश्रुत जीवनी एवं साहित्य से निर्मित कथा संसार को नया कलेवर प्रदान किया है| प्रस्तुत उपन्यास की मूल संवेदना यही नई दृष्टि है| लोकाश्रित अनेक किंवदन्तियाँ इस उपन्यास में बार-बार नवीन होकर, एक विस्तृत कथ्य का रूप धारण कर चुकी है जिससे कभी भी यह आभास नहीं होता कि ये किंवदन्तियाँ यथार्थ नहीं है|

उपन्यास का प्रमुख पात्र आर्य देवरात कुलूत वंश का राजकुमार है, जो अपनी पत्नी शर्मिष्ठा के सती हो जाने पर अपना घर छोड़कर भटकते हुए अंत में हलद्वीप में बस जाते है| किन्तु उनके पूर्व परिचय से अपरिचित होने के कारण हलद्वीप के निवासी उन्हें एक रहस्यमय व्यक्तित्व मानते हैं| फिर भी अपनी विद्वत्ता व् अन्य गुणों के कारण वे नागरिकों तथा वहाँ के राजा के लिए भी सम्मानित व्यक्ति हो जाते है| देवरात, वृद्ध के दोनों पुत्र गोपाल आर्यक तथा श्यामरूप को अपना शिष्य स्वीकार करते हैं| दोनों शिष्यों पर वे समान स्नेह प्रकट करते है, यद्यपि श्यामारूप वृद्धरूप को मेले में मिला था|

हलद्वीप की सम्मानित गणिका मंजुला, प्रारंभ में आर्य देवरात को एक भण्ड साधू मानती है, लेकिन जैसे ही उसे यह भ्रम दूर होता है वैसे ही वह अपना समग्र आत्मिक भाव देवरात को समर्पित करती है| वह एक दिन देवरात को अपने यहाँ

निमंत्रित करती है, किन्तु देवरात उस समय ही मंजुला के महल पहूँचते है, जब वह द्वीप में फैली महामारी से ग्रस्त हो जाती है| बीमार मंजुला आर्य देवरात को अबोध बालिका मृनालमंजरी को सौंपकर, अज्ञातवास लेकर चल देती है| मृणाल मंजरी का पालन पोषण देवरात के आश्रम में वृद्ध रूप के दोनों पुत्रो के साथ होता है और वहाँ गोपाल आर्यक और मृणाल का संबंध बाद में प्रेम में बदल जाता है| इसी बीच हलद्वीप के पुराने राजा का स्वर्गवास होने पर नागवंश का यज्ञसेन भारशिव, नये राजा का पद ग्रहण करता है| लेकिन उनके पुत्र रूद्र सेन की लम्पटता के कारण हलद्वीप में नागरिक अव्यवस्था से पीड़ित हो जाते है और वधुएँ असुरक्षित हो जाती है| आर्य देवरात ने नये रजा को समझने का प्रयत्न करता है लेकिन वह विफल हो जाता है, यही नहीं उनका अपमान भी किया जाता है|

अपने वास्तविक पिता की खोज में देवरात का, आश्रम छोड़कर भाग गए श्यामारूप को ढूँढने के लिए गोपाल आर्यक निकल जाता है| किन्तु वह पकड लिया जाता है| बाद में मृणाल का, गोपाल आर्यक से विवाह होता है| तब तक गोपाल आर्यक के नेतृत्व में युवा वर्ग, रूद्रसेन के अत्याचारों के विरुद्ध जन मानस तैयार करता है| आश्रम से भाग निकला श्याम रूप नट जंभल के दल में शामिल होकर छबीला पण्डित नाम से जाना जाता है| वहाँ अन्जुक को पछाड़कर उसे प्रसिद्ध कम्मल की ख्याति प्राप्त होती है| उस दल में आयी एक किशोरी मंदा से उसे प्रेम होता है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति के पूर्व ही मंदा से वसन्त सेना को बेची जाती है| मंदा की खोज में निकला श्याम रूप, मधुरा पहूँचकर सदस्य वृद्ध ब्राह्मण के यहाँ शार्विलक नाम से रहता है| वहाँ मल्ल मागु को पछाड़कर वह प्रसिद्ध मल्ल के रूप में जाना जाता है| रहते समय उसे गोपाल आर्यक तथा मंदा के बारे में सूचनाएँ मिलती है और वह उज्जयिनी के लिए रवाना होता है|

सम्राट के बलाधिकृत सेनापति गोपाल आर्यक चंदा के उद्धाम प्रेम के कारण कुण्डित होता है क्योंकि वह स्वयं जानता है कि यह प्रेम सामाजिक नियमों का उल्लंघन है| इस संबंध में समुद्रगुप्त का रोष-भरा पत्र पाकर वह सेना का भार भटार्क को सौंपकर भाग जाता है| भटकते-भटकते श्रांत होकर पेड़ तले पड़े हुए गोपाल आर्यक को आक्रमणकारियों से बचने के लिए भागते हुए आये श्यामरूप से छिप जाने की सलाह मिलती है| पर उस क्षण दोनों एक दूसरे को पहचान नहीं पाती है| छिपने के उस अवसर पर गोपाल आर्यक का कवि चंद्रमौली (आर्य देवरात की पत्नी की दिवंगता बहन सुनीता का पुत्र), जीवन के रहस्य की तलाश में निकले एक भावुक किशोर कवि है| कालांतर में इनका श्याम रूप से भी परिचय होता है|

गोपाल आर्यक के भाग जाने पर, चन्द्र मृणाल के पास आती है और वहीं रह जाती है| अपने सहज वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से वह मृणाल की प्रिय जीजी बन जाती है| चंदा के जीवन के सत्य को जानकार, सुमेर काका के मन की घृणा भी दूर हो जाती है| इसी समय चंदा, मृणाल और सुमेर काका बाबा से मिलते है, जो ज्योतिषर्विद और अभिमान कलुष से रहित सहज लास्य की प्रतिमूर्ति है| उपन्यास के अंत में इसी नाड़ी विज्ञान के द्वारा चंदा के मन का अभिमान नष्ट किया जाता है|

इस समय तक मंजुला की जीवात्मा प्रयास पूर्वक गोपाल आर्यक से मिलती है, जिसके परिणाम स्वरूप उनका, उज्जयिनी के महागणी चारुदत्त और आर्याधूता से मिलन होता है| इन्ही के अपमान पर वह राजा पालक के सिर काट लेता है और उज्जयिनी पर अधिकार कर लेता है|

उज्जयिनी पहूँचा श्याम रूप, वसंतसेना और मंदा को पाता है जो अपने ही महल में बंदी थी| दोनों को मुक्त करके उनके लिए उचित व्यवस्था करते हुए श्याम रूप गोपाल आर्यक से मिलने के लिए राजमहल जाता है|

अब तक गोपाल आर्यक और मृणाल की कीर्ति फ़ैल जाती है| भागे हुए गोपाल आर्यक की खोज में मृणाल, चंदा, शोभन और सुमेर काका निकल जाते हैं| सम्राट समुद्रगुप्त इनकी रक्षा हेतु चुप के से मल्लाहों के वेष में सैनिको की नाव भी साथ भेज देते हैं| सभी बटेश्वर तीर्थस्थल पर ठहरते हैं| यही पर मृणाल का, बाबा से आत्म साक्षात्कार होता है| चन्द्रा, गोपाल आर्यक को खोजकर मृणाल को सौप देना चाहती है| परन्तु उसका चित्त चंचल है| मृणाल शांत चित्त से यही विश्वास रखती है कि इसी बटेश्वर तीर्थ पर आर्यक से उसका मिलन हो जाएगा|

इस बीच भटार्क, समुद्रगुप्त का साम्राज्य फैलाकर अपनी सारी विजयों को गोपाल आर्यक के नाम से घोषित करता है| वह उज्जयिनी पहूँचकर आर्य चण्डसेन को समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार करवाता है| श्यामारूप ही आर्य चण्डसेन को राजा पालक की कैद से मुक्त करवाता है| तदुपरांत भटार्क, श्यामारूप और चण्डसेन सब मिलकर उज्जयिनी के राज महल की ओर जाते हैं|

बटेश्वर तीर्थस्थल पर, चंद्रा का भी बाबा से साक्षात्कार होता हैं| चंद्रा के अभियान से भरी नाड़ियो की सूजन को कम करके बाबा अदृश्य हो जाते है| चंद्रा, शांति की निद्रा में है|

उस समय मृणाल, शोभन और सुमेर काका उसे ढूँढते हुए वहाँ पहूँचते है| तब वहाँ गोपाल आर्यक का भी आगमन होता है| शांति निंद्रा में रही चन्द्र, शोभन की 'बड़ी आत्मा' की मंत्र सी वाणी से उठ खड़ी होती है| अपने को गोपाल आर्यक की गोद में पाकर तथा मृणाल को उसके पैर दबाते देखकर वह तुरंत ही उठती है और आर्यक के चरणों में पड़ती है| उसकी आँखों से निकले आँसुओ से उसका सारा मान-अभिमान बह जाता है| वह पूर्णतः अभियान-कलुष से रहित हो जाती है| सभी धीरे धीरे प्रस्थान करती है और यहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है|

उपर्युक्त औपन्यासिक कथ्य को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास ही द्विवेदी ने किया है| उपन्यास के कुछ पात्रों वा घटनाओं को विभिन्न तानों बानों में गुम्फित करके इस रचना को एक औपन्यासिक स्वरूप देना ही द्विवेदी का उद्देश्य रहा है| इसके लिए उन्होंने कुछ पात्र लोक कथाओं से लिए, और कथा को आगे बढ़ाने के लिए कुछ पात्रो का सृजन किया| इसी प्रकार उज्जयिनी के चारुदत्त के प्रेम त्रिकोण, समुद्रगुप्त का आसमुद्र विजयी अभियानं जैसी घटनाएँ लेखक के मानस की उपज है| प्रस्तुत उपन्यास में भारतीय संस्कृति तथा इतिहास बोध का गहरा अंकन उपन्यासकार के द्वारा हुआ है|

अनामदास का पोथा

अनामदास का पोथा द्विवेदीजी का अंतिम उपन्यास है| 1976 में इसका प्रकाशन हुआ था| इस उपन्यास की कथा 'छांदोग्य उपनिषद' के चौथे प्रपाठक से ली गई है| प्रस्तुत उपन्यास में आध्यात्मिकता का भरपूर वर्णन मिलता है, इसलिए ही यह द्विवेदी के अन्य उपन्यासों से बिलकुल भिन्न है| एक 'आध्यात्मिक उपन्यास' की संज्ञा इसके लिए उचित है| 'अनामदास का पोथा' नामक उपन्यास के द्वारा द्विवेदी का लक्ष्य दीन-दुखियों की सेवा है| इसमें प्रेम और मानवता का सजीव वर्णन प्राप्त होता है|

रिक्व ऋषि के एकमात्र पुत्र रैक्व, माता पिता की मृत्यू के बाद चिंतन मनन में लीन हो गये| उन्होंने अपनी समाधि में यह अनुभव कर लिया है कि समस्त चैतन्य जगत को प्राणवंत बनाये रखनेवाली चीज़ वायु है| एक दिन वे अपने आश्रम से थोड़ी दूर टहलते टहलते चले गये| उसी समय भयंकर आंधी आयी और प्रचंड वेग से वर्षा भी होने लगी| जल के वेग से रैक्व ऋषि पास की एक नदी धारा में बहते हुए किसी प्रकार एक शिला खण्ड के ऊपर जा बैठे| आंधी और पानी का वेग जब कम

हुआ तो वे किसी तरह नदी के किनारे आ बैठे| नदी के किनारे चलते हुए थोड़ी ही दूरी पर, मूर्च्छित अवस्था में उन्हें एक अनुपम सुन्दरी दीख पड़ी| पास ही एक बैलगाड़ी कीचड़ में डूबी पड़ी थी और गाड़ीवान भी पास ही मरा पड़ा था| रैक्व ऋषि ने अपने जीवन में कभी स्त्री देखी ही नहीं थी| माँ का उन्हें स्मरण भी नहीं था| इस सुंदरी को वे देवलोकवासी समझ बैठे|

यह सुन्दरी, राजा जनश्रुति के एक मात्र पुत्री जाबाला थी जो अपने मौसी के घर जाते समय इस आँधी पानी की लपेट में आ गई थी| होश आने पर जाबाला ने देखा कि उनके केशों और आँखों पर एक तापस युवक हाथ फेर रहा है| वह हडबडाकर उठ बैठी| बातचीत से जाबाला को यह समझ में आया कि तापस्कुमार व्यवहार शून्य है| ऋषिकुमार उनके अनुपम सौन्दर्य से अभिभूत हो गये और उसे 'शुभा' कहकर संबोधित करने लगे| राजकुमारी भी ऋषि के भोलेपन पर मुग्ध हो गई| अनजाने यह व्यापार चलता रहा| जाबाला को घर जाने की याद आई, लेकिन वह इतनी कमजोर हो गई थी कि चल भी नहीं सकती थी| उसने ऋषिकुमार से उसे घर पहूँचाने का आग्रह प्रकट किया| रैक्व ऋषि ने उसे अपने पीठ पर बिठाकर घर पहूँचाने को सोचा| इसी बीच जाबाला के अनुचर उसे ढूँढते हुए आये| लज्जावश जाबाला ने ऋषि कुमार से अपने को छिपाने का अनुरोध किया| लेकिन उसे अनुचरों के साथ घर जानी पड़ी|

जबाला की रूप माधुरी और लोक ज्ञान ने रैक्व ऋषि को अभिभूत-सा कर दिया, वे उस जगह को छोड़ नहीं सके| वही रथ के नीचे बैठकर ध्यान लगाते रहे| उनकी पीठ में एक अजीब सनसनाहट होती रही| जाबाला की बातें उन्हें एकाग्र नहीं बनने देती| घर आने पर जाबाला भी तापस कुमार की यादों में डूबती रही|

एक बार रैक्व की भेंट एक प्रौढ़ महिला से हुई| वह महिला ओषस्तिपाद की धर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी ऋतूम्भरा थी| माताजी, रैक्व की दार्शनिक चिंताओ की शांति के लिए विद्वानों और अनुभवी लोगों का संपर्क आवश्यक समझती थी| इस समय देश में अकाल पड़ा था|

जाबाला के मृत रथ वाहक की पत्नी ऋजुका अपने बेटे के साथ रैक्व से मिली| रैक्व उसे आश्रम में ले गये और दीदी कहकर संबोधित करने लगे| ऋषि औषस्तिपाद और ऋतूम्भरा के संपर्क में आने पर रैक्व की समझ में आया कि तपस्या की कसौटी समाज है| कोई व्यक्ति दूसरों के लिए कितना त्याग कर सकता है इसीसे उसकी धर्मपरायणता मालूम हो जाती है| अतः रैक्व ने समाज सेवा करने का निश्चय किया| उन्होंने प्राणवायु से बढ़कर आत्मा को समझने का प्रयास किया|

इधर जाबाला की बीमारी बढती गई| उसके उपचार के लिए नृत्य और नाटक की योजना की गई| कोहिलयों ने जाबाला से मनोजन्मा देवता और अशोक वृक्ष के पूजन करवाया| माताजी, जाबाला से मिली| माताजी के सद प्रयत्नों से रैक्व और शुभा का मिलन हुआ|

आश्वलायन ने रैक्व को जटिल मुनि से मिलाया| उन्होंने रैक्व के हाथ के रेखायें भी देखी| जटिल मुनि ने रैक्व को बताया कि विवाह और उद्धाह में भेद है| उद्धाह द्वारा पति पत्नी परस्पर एक दूसरे की आध्यात्मिक चेतना को परिष्कृत करते हैं| विवाह में पाणिग्रहण किया जाता है, उद्धाह में उपोद्गूहण के भाव को समझने के लिए अपने आपको संयमित करने का प्रयास है| ऋषि औषस्तिपाद ने उन्हें उपदेश दिया कि समस्त जगत वैशानर का रूप है| प्रत्येक विश्वात्मा का रूप है| माताजी की बात रैक्व के दिमाग में अटल गई, मनुष्य दो ही खेल खेलता है – प्रिय को देवता बना लेता है या फिर देवता को प्रिय बना लेता है| रैक्व के मन मंदिर में परम

वैशानर शुभा के रूप में आने लगे और शुभा वैशानर के रूप में अभिव्यक्त हो गई| अन्ततः वे शुभा को स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन विवाह द्वारा नहीं, उद्धाह द्वारा| यही उपन्यास की समाप्ति होती है|

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में इतिहास

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास की पुनः प्रस्तुति है, जिसमे उपन्यासकार इतिहास की भूली कड़ियों को जोडने के साथ साथ अपनी कल्पना शक्ति से ऐस्तिहासिक पात्रो के चरित्र का पुनः निर्माण करता है| ऐतिहासिक उपन्यास का मुख्य लक्ष्य किसी विशेष घटना के ऐतिहासिक यथार्थ का उद्घाटन तथा उसकी तर्कसंगत वैज्ञानिक व्याख्या करना है| ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास के ढांचे पर कल्पना की लता को निर्बाध बढ़ने और पल्लवित-पुष्पित होने का अवसर मिलता है| ऐतिहासिक उपन्यासकार को एक तरफ ज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति निष्ठा बरतनी होती है और दूसरी तरफ उसे ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण के प्रति प्रतिवद्ध होना पड़ता है| हज़ारी प्रसाद द्विवदी के उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाएँ गौण है, उन्होंने इतिहास के तथ्यों को लेकर कल्पना के द्वारा उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है| उनका मुख्य लक्ष्य ऐतिहासिक यथार्थ की व्याख्या एवं विश्लेषण है| इतिहास के तत्वों के आधार पर द्विवेदी के उपन्यासों का विश्लेषण आगे किया जाएगा|

बाणभट्ट की आत्मकथा

ऐतिहासिक पात्र एवं अन्य पात्र

बाणभट्ट की आत्मकथा, हर्षकालीन भारत के आधार पर लिखी गई एक ऐतिहासिक कृति है| यह कृति भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग से लेकर उसके पतन तक के ऐतिहासिक यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं| प्रस्तुत उपन्यास

का नायक बाण भट्ट निश्चय ही ऐतिहासिक व्यक्ति है, जिसके जीवन के बारे में कुछ निश्चित जानकारी उपलब्ध है| बाण भट्ट ने 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' में अपने बारे में भी कुछ सूचनाएँ दी है| इनमें दिये गये सूचनाओं को बाण भट्ट की आत्मकथा में द्विवेदी इस प्रकार चित्रित करते हैं कि वे हमारे इतिहास बोध को आघात पहूँचाये बिना एक मनोरम कल्पना जगत में हमें ले जाते हैं| प्रस्तुत उपन्यास का गौण पात्र है कुमार कृष्ण वर्धन| वे हर्ष वर्धन का चचेरा भाई है| लेकिन हर्ष चरित में 'कृष्ण' का उल्लेख मिलता है, जिसे प्रामाणिक मनाने में कोई संकोच की आवश्यकता नहीं होती| कुमार कृष्णवर्धन के चरित्र निर्माण में द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक यथार्थ का पूरा ध्यान रखा है|

ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रश्न उठता है कि बाण भट्ट की आत्मकथा का तुन्वर मिलिन्द कौन है? आचार्य द्विवेदी ने इस संबंध में कहा है कि ऐतिहासिक दृष्टि से तुन्वर मिलिन्द एक समस्या है| उपन्यास के विभिन्न स्थानों पर आये उल्लेखों से ज्ञात होता है कि तुन्वर मिलिन्द भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित किसी राज्य का शक्तिशाली राजा है| एक स्थान पर भट्टिनी कहती है – "मेरा जन्म रोमकपतन के उत्तरी अस्त्रियवर्ष में हुआ था| मैं वहाँ से पुरुष पुर तक पिता की गोद में बड़ी हुई हूँ|"[7] इससे तो स्पष्ट है कि तुन्वर मिलिन्द 'यवन' है| तुन्वर मिलिन्द यवन होने के साथ-साथ हूणों का शत्रु देवमन्दिरों और विहारों का रक्षक भी है| उसके नाम में देवपुत्र विरुद्ध जुड़े होने से उसके कुषाण होने का संकेत मिलता है| कुषाण राजाओं के नाम के 'देवपुत्र का प्रयोग होता है| कुषाण राजा बौद्ध धर्म पर अटल विश्वास रखनेवाले थे, लेकिन ब्राह्मण धर्म से भी उनका आदर थे| अतः तुंवर मिलिन्द को कुषाण वंश का होने की संभावना नहीं टाला जा सकता|

[7] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 33

आभीर सामंत लोरिक देव का चरित्र भी इतिहास से संबंधित है| वे गंगा और महासरयु के संगम पर स्थित भद्रेश्वर दुर्ग का शासक हैं| लेरिक देव के बारे में लोक साहित्य में चर्चा मिलती है| उसका काल अनिश्चित है|

संस्कृत साहित्य के इतिहास में हर्षवर्धन 'प्रियदर्शिक', 'रत्नावली' और नागानंद नामक नाटकों के रचयिता माना जाता है| इन रचनाओं का संस्कार बाण भट्ट के द्वारा हुई होगी, यही द्विवेदी जी का मत है|

कथा की वास्तविकता से कल्पना का समन्वय

'हर्ष चरित' के अनुसार कुछ लोगों ने श्रीहर्ष से बाण भट्ट की चुगली खाई थी, जिससे वे उससे नाराज़ हो गए थे| कुमार कृष्ण का पत्र पाकर जब बाणभट्ट, श्री हर्ष से मिला तो उन्होंने पहले उसकी अवहेलना की बाद में उसके पाण्डित्य की जानकारी पाकर प्रसन्न हुई और उसे सम्मान दिया तथा राजकवि घोषित किया| इस तथ्य को प्रस्तुत उपन्यास में कल्पना के समावेश से द्विवेदी ने मनोरम बना दिया है|

बाणभट्ट की आत्मकथा में अनेक कल्पित पात्र हैं| उपन्यास की नायिका भट्टिनी, निपुणिका, सुचरिता, विग्रहवर्मा, सुगत भद्र, भर्वशर्मा, महामाया, भैरवी, अघोर भैरव आदि पात्र कल्पित है फिर भी उनकी बोल चाल, व्यवहार तथा वेशभूषा में इतिहास का प्रभाव अवश्य पड़ा है|

बाण भट्ट की आत्मकथा के संपूर्ण पात्र अतीत से निकाले गए है जिनका आधार सातवीं शताब्दी का हर्षकालीन सांस्कृतिक तथा राजनैतिक इतिहास है| कथानायक बाण सातवीं शताब्दी का ऐतिहासिक पात्र है| उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि ऐतिहासिक घटनाओं के साथ उसके चरित्र को उपन्यास में न जोडकार कल्पना के बल पर मानवीय भावों के संपूर्ण संपत्ति उस पर सौंपी है|

देशकाल-वातावरण

तुंवर मिलिंद 'बाण भट्ट की आत्मकथा' की नायिका भट्टिनी के पिता है| यह पात्र प्रत्यक्ष रूप में पाठकों के सामने नहीं आता, परोक्ष रूप में कभी कभी अन्य पात्रों द्वारा उसका स्मरण होता है| "बाण भट्ट उसे तत्र भवान, विषम समर विजयी, बाह्लीकाविमर्दन प्रयत्न वाड्ब देवपुत्र तुंवर मिलिंद कहते है|"[8] कुमार कृष्णवर्धन, लोरिक देव, आचार्य सुगत भद्र, भर्वु शर्मा, बाण भट्ट आदि उसे समुद्र गुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, मौखरी वीर गृह्वार्मा आदि की तरह वीर और गुणों से लोहा लेनेवाला, ब्राह्मणों और श्रमणो का रक्षक, मंदिरों और देवभूमियो की आशाभूमि, स्त्रियों और बालकों का मानदाता आदि कहते है|[9] कुमार कृष्ण वर्धन के अनुसार तुंवर मिलिंद के प्रताप से उत्तर देश काँपते है जिनकी खरतर असी धारा स्त्रोतस्विनी में शक पार्थिव जैसे नरेश फेनबुदबुद की भांति बह गये, जिनकी प्रतापाग्नी ने उदण्ड वाह्लिको को इस प्रकार तोड़ डाला जैसे क्रीडा परायण शिशु क्षत्रक दण्ड को तोड़ देते है और जिनकी स्फुर्जित दीप्ति वहीं में प्रयत्न दस्यु स्वयं पतंगायमान हो रहे है|[10] भर्वशर्मा के अनुसार 'प्रयत्न दस्युओ' को विषम समर विजयी, वाह्लिका इमार्दन, प्रयत्न वादव अग्यात प्रतिस्प्रधा विकार देवपुत्र तुन्वर मिलिन्द ने ही भारत में प्रवेश करने से रोक रखा है| उनके अनुसार वे ही आर्यवर्त को दस्युओं के दंष्ट्राजाल से टिड्डियों से भी विपुल, भेडियों से भी क्रूर हूण दस्युओं से बचा सकते है| कुमार कृष्णवर्धन के अनुसार एक बार यदि दस्युओं ने गिरिवर्त्म लाँघ कर मैदान में प्रवेश किया तो उन्हें रोकना कठिन हो जायेगा|[11] लोरिक देव भी गिरि संकट के पार एकत्र हो रही म्लेच्छवाहिनी से देश को बचाने के लिए तुंवर मिलिन्द को ही समर्थ मानते हैं|

---

[8] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 72

[9] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 22-23

[10] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 27

[11] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 30

प्राचीन भारत के इतिहास ग्रंथो में हर्षवर्धन के राज्यारोहण के समय भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर इस नाम के किसी प्रतापी राजा का उल्लेख नहीं मिलता| ईसा की दूसरी शताब्दी के अंतिम चरण में भारशिव नाग राजाओं ने उत्तरी भारत से और यौधेयों ने हरियाणा पंजाब क्षेत्र से कुषाण राजाओं को मार भगाया था| लेकिन कुषाण साम्राज्य में अफगानिस्थान, बैक्ट्रिया, काश्गर, खोंतान, यारकंद जैसे दूरस्थ क्षेत्र भी शामिल थे| कुषाण साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर या पेशावर थी, जो तंवर मिलिन्द की भी राजधानी है| इतिहासकारों का अनुमान है कि अंतिम कुषाण वासुदेव के अधिकार से उत्तर पश्चिम के इलाके निकल गए थे| कुषाण साम्राज्य का पतन फ़ारसी आक्रमण से हुआ है, इसका प्रमाण इतिहास ग्रंथों से हमें मिलता है| कुषाण की एक शाखा काबुल की घाटी और आसपास के क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था और हूणों के लगातार आक्रमण के फलस्वरूप वे ईसा की नवीं शताब्दी के मध्य तक अपना अस्तित्व बनाया रखा था|

इस काल में भारत के पश्चिमोत्तर भाग का इतिहास अनुमान पर आधारित हैं| अतः किसी ऐसे कुशान राजा की कल्पना उपन्यास की दृष्टि से असंगत नहीं मानी जा सकती जो हर्षवर्धन के राज्यारोहण के समय पश्चिमोत्तर दिशा से हूणों के आक्रमण को रोकने का कार्य कर रहा हो| अतः तुंवर मिलिन्द की कल्पना ऐतिहासिक तथ्य न होते हुए भी ऐतिहासिक संभावना के क्षेत्र के अंतर्गत है|

बाणभट्ट की आत्मकथा में हूणों के संबंध में जो उल्लेख मिलता है वे इतिहास सम्मत है| स्वयं हर्ष वर्धन को हूणों के आक्रमण का सामना नहीं करना पड़ा| लेकिन उनके राज्यकाल में पश्चिम से हूणों के आक्रमण की संभावना को नकारा नहीं जा सकता| प्रस्तुत उपन्यास में इस संभावना को औपन्यासिक प्रसंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है| इस प्रसंग के माध्यम से द्विवेदी को अपना इतिहास दर्शन प्रस्तुत करने

का अवसर प्राप्त हो गया है| इतिहासकार भी इस तथ्य को स्वीकार करता है कि भारत में विदेशी आक्रमणों की सफलता का प्रमुख कारण सामान्य जनता की राजनीतिक उदासीनता या तटस्थता, हिन्दू समाज की विसंगतियों, समाज का अनेक जातियों में विभाजित होना तथा निरंतर बढ़ता हुआ जाति भेद और वर्ग भेद था|

बाणभट्ट की आत्मकथा में कुमार कृष्णवर्धन, भर्वशर्मा, लोरिक देव आदि भारतवर्ष को हूणों के आक्रमण से बचाने के लिए किसी राजशक्ति को विशेषकर पश्चिमोत्तर सामंत के प्रतापी शासक तुवर मिलिन्द की भूमिका को आवश्यक मानते हैं| लेकिन महामाया भैरवी इसका विरोध करती है – "आर्य सभासदो, उत्तरापथ के लाख लाख नौजवानों ने क्या कंकण वलय धारण किया है? क्या वे वृद्धों और बालकों, बेटियों और बहुओं, देवमन्दिरों और विहारों की रक्षा के लिए अपने प्राण नहीं दे सकते? क्या इस देश के विद्वानों में स्वतंत्र संगठन बुद्धि का विलोप हो गया है?"[12] वह युवकों को 'देवपुत्र' और 'महाराजाधिराज' की आशा छोड़ने तथा संगठित होकर शत्रुओं का सामना करने का आह्वान देता है|

चारुचन्द्रलेख

देशकाल-वातावरण

बारहवीं एवं तेरहवीं सदी के ऐतिहासिक घटना का चारुचन्द्रलेख में चित्रण हुआ है| उस समय भारत वर्ष के उत्तरी भाग पर पूर्ण रूप से तुर्को का राज्य स्थापित हो गया था| दक्षिण में गोपाद्री दुर्ग तक वे बढ़ आये थे, और वे और भी आगे बढ़कर पैर जमाने की कोशिश में थे| लेकिन पूर्वी देश आक्रमणों से मुक्त था| सर्वत्र एक प्रकार की शिथिलता थी| ऐसी स्थिति में राजा सातवाहन अन्य राज्यों को संगठित करने तथा उनसे सहायता माँगने का प्रयत्न कर रहे थे|

[12] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 44

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के बाद और गुलामवंश के शासनकाल में भारतीय समाज को मानसिक कठिनाईयों का अनुभव करना पड़ा| गुलाम वंशी तुर्की के शासन से सारी जनता त्रस्त थे, उनकी सांप्रदायिकता से हिन्दू जनता बहुत पीड़ित थी| द्विवेदी ने इस धरातल को अपनाते हुए ही अपने उपन्यास की रचना की है| सारा आर्यवर्त विदेशियों से पदाक्रांत था| उपन्यास का पात्र राजा सातवाहन अनुभव करता है – "संपूर्ण आर्यवर्त मेरी आँखों के सामने ध्वस्त हो रहा है| यहाँ के मंदिर और मठ वृद्ध और बालक, ब्राह्मण और श्रमण, अनाथ, पंगु, सब भयग्रस्त हैं| किसी के जीवन का कोई मूल्य नहीं है| एक-एक करके क्षत्रिय राज्य विदेशियों के प्रचण्ड प्रहार से जर्जर होते जा रहे हैं| सारा उत्तरापथ व्याकुल है| मंदिर ध्वस्त हो रहे हैं, शास्त्रक्षेप्र भस्मी भूत हो रहे हैं| राज प्रसाद श्रृंगालो की ध्वनी के रूप में कातर चीत्कार कर रहे हैं| शिल्प और कला सिसक रही है, विद्वान और शिल्पि शरण प्रार्थना के लिए मारे-मारे फिर रहे है| कवि और शास्त्रज्ञ भिक्षुक हो गए हैं| जिधर देखो उधर आतंक और भाँती का साम्राज्य है|"[13]

लेखक सातवाहन की वीरता का परिचय देते हुए कहते हैं कि सातवाहन का मंतव्य है – "मैं प्रबल प्रतापी परमर्दिदेव और महापराक्रमी जयत्रिचंद के रक्त की महिमा भूल नहीं सकता हूँ| मैं जानता हूँ कि हमारे भीतर का चिन्मय तत्व अन्य तत्वों से बड़ा है| वह परमर्दिदेव और जयत्रिचंद से अनंत गुण बलशाली है, परमपुरुष का औरस ही नहीं स्वयं मूर्तिरूप है|"[14]

इस अवधि में मालवा (अवन्तिका) का राजा कौन था, इस पर इतिहास मौन है| परमारवंशी राजा भोज की मृत्यु (1050 ई.) के बाद मालवा में कोई शक्तिशाली

[13] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 59

[14] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 73

राजा नहीं हुआ| इस वंश का अंतिम ज्ञात राजा उदयादित्य है, जिसने 1077 ई. तक राज्य किया था| इसके बाद मालवा पर कदाचित छोटे-मोटे राजाओं का आधिपत्य रहा होगा| बारहवीं शदाब्दी के अंतिम चरण में मालवा में किसी ऐसे राजा की संभावना है जो तुर्कों का सामना किया हो और उन्हें देश से बाहर मार भगाने का प्रयत्न किया हो| कुछ इतिहासकारों का मत है कि कुतुबदीन ऐबक ने 1188-1200 ई. में मालवा पर विजय प्राप्त की थी| द्विवेदी द्वारा सातवाहन की कल्पना और उनके द्वारा तुर्कों की पराजय का वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से संगत मान पड़ता है|

घटना, देश तथा क्षेत्र से संबंध

उपन्यास में सातवाहन को 'क्षीण बल अवन्तिका नरेश' कहा गया है जिसकी राजधानी उज्जयिनी है| कथा में शाकम्भरी नरेश, पृथ्वीराज की पराजय, काशी का कान्यकुब्ज पर तुर्की के अधिकार और जयत्रिचंद की मृत्यु, चंदेल राजा परमर्दिदेव और उनके कालिंजर दुर्ग के पतन सारनाथ और नालंदा के विहारों के ध्वंस, लक्ष्मणसेन की मृत्यु, आदि ऐतिहासिक तथ्यों के उल्लेख आये हैं| इतिहास ग्रंथों के अनुसार पृथ्वीराज की पराजय तैरान की लड़ाई में (1181-82) और जयचंद की हार चन्दावर की लड़ाई में (1184 ई.) हुई थी| कालिंजर दुर्ग का पतन 1202 ई. में और सारनाथ, नालंदा आदि का विध्वंस 1200 ई. के पूर्व 1288 ई. में हुआ था|"[15]चारुचन्द्र लेख में उपर्युक्त घटनाओं का उल्लेख कालक्रम के अनुसार नहीं हुआ है|

सातवाहन की पूरी राजनैतिक कहानी इस ढंग से प्रस्तुत की गई है कि उसमें कोई गंभीर ऐतिहासिक असंगित नहीं दिखती है| जयत्रीचन्द्र के पतन के बाद उनके मंत्री विद्याधर भट्ट और परमर्दिदेव की पराजय के बाद उनके राज कवि जगनिक, सातवाहन की सभा में आश्रय पाते हैं| सातवाहन, विद्याधर भट्ट, बोधा, मैना आदि

[15] Indian History, Arvind, पृ : 46

के सहयोग से दिल्ली के सुलतान से टक्कर लेने और आर्यवत को उनसे मुक्त करने का प्रयत्न करते है| यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से इस घटना की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं की जा सकती, पर 1180-1210 ई. में उत्तर भारत में जो संघर्ष चल रहा था, उससे यह बेमेल नहीं है| 1184 ई.में चन्दबरदाई की लड़ाई में जयचंद की पराजय और मृत्यु के बावजूद उसका पूरा राज्य मुसलामानों के कब्जे में नहीं आया| कनौज पर कब्ज़ा करने के लिए ऐबक को पुनः 1187-88 ई. में आक्रमण करना पड़ा| 1188-1200 ई. में सुलतान की सेना ने मालवा पर आक्रमण किया, पर संभवतः उसे कोई सफलता नहीं मिली| मालवा पर मुसलमानों का कब्ज़ा 1234 ई. में इल्तुतमिश के आक्रमण के बाद हुआ| 'चारुचन्द्रलेख' में मालवा पर सुलतान की सेना के आक्रमण को विद्याधर और मैना द्वारा संगठित सेना विफल बना देती है| इसकी संगति ऐबक के मालवा पर असफल आक्रमण से जोड़ी जा सकती है| इसी प्रकार सातवाहन का अशोक चल्ल और दिल्ली के सुलतान के किसी भूतपूर्व सेनापति 'शाह' से सैनिक सहायता प्राप्त कर दिल्ली के सुलतान से भिड़ने की कथा भी ऐतिहासिक है| अशोक चल्ल को, अशोक चन्द्र से अभिन्न माना जा सकता है जिसके दान पत्र बोध गया में प्राप्त हुए है| एक स्थान पर 'शाह' को नालंदा का विजेता कहा गया है| पर ऐतिहासिक तथ्य यह है कि नालंदा पर मुहम्मदबिन बख्तियार खिलजी ने आक्रमण किया था| चारु चन्द्र लेख में भी 'तुर्क सेनापति बख्तियार' को नालंदा के मंदिरों और विहारों का ध्वंसकर्ता बताया गया है| ऐतिहासिक दृष्टि से बख्तियार खिलजी और 'शाह' एक व्यक्ति नहीं लगता है|

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि द्विवेदी प्रस्तुत उपन्यास में ऐतिहासिक घटना का चित्रण एक हद तक किया है, लेकिन जहाँ तक तत्कालीन ऐतिहासिक यथार्थ के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है, वे अत्यंत सजग यथार्थवादी सिद्ध होते है| उनके

अधिकांश पात्र अर्ध ऐतिहासिक है| फिर भी ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति वे पूरी तरह से ईमानदार है|

पुनर्नवा

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की 'पुनर्नवा' में चौथी शताब्दी के गुप्तकालीन भारतवर्ष को विषय बनाकर, अपनी कल्पना के सहारे उस तथ्य को और अधिक संवेद्य बनाने का कार्य द्विवेदी ने किया है| परंपरा और रूढी तथा प्राचीन और नवीन मूल्यों के बीच एक स्पष्ट दृष्टिकोण रखना द्विवेदी की एक विशेषता है| वे इतिहास को मनुष्य की तीसरी आँख माननेवाले हैं| उनके अनुसार वह व्यक्ति आधुनिक नहीं है, जो इतिहास को अस्वीकार करते हैं| पुनर्नवा के पात्र एक ओर अपनी प्राचीनता से हमें मोहित करते है तो दूसरी ओर वह आधुनिक दृष्टि से हमें मार्गदर्शन देते हैं| द्विवेदी ने इतिहास के कम से कम तथ्यों को लेकर उनपर अपनी कल्पनावल्ली को उन्मुक्त भाव से पल्लवित होने का कार्य किया है|

ऐतिहासिक पात्र एवं अन्य पात्र

'पुनर्नवा' में समुद्रगुप्त के संबंध में दी गई एक और सूचना इतिहास सम्मत नहीं है| 'पुनर्नवा' के एक पात्र के अनुसार समुद्रगुप्त का पिता पहले प्रयाग और साकेत के बीच स्थित किसी छोटे से राज्य का राजा था| स्वयं कथाकार एक स्थान पर बतलाता है कि समुद्रगुप्त के प्रपितामह प्रयाग के निकटवर्ती एक छोटे से राज्य के अधिपति थे| पर इतिहासकारों के अनुसार गुप्त साम्राज्य के संस्थापक श्री गुप्त, जो समुद्रगुप्त के प्रपितामह थे, मगध में ही किसी छोटे राज्य के अधिपति थे|

'पुनर्नवा' का एक प्रमुख पात्र मातृगुप्त है, जो वस्तुतः संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवि कालिदास से अभिन्न है| उपन्यास की कथा के अनुसार कालिदास (मात्रगुप्त) समुद्रगुप्त का समकालीन है| कालिदास का आवीर्भाव काल ऐतिहासिक

दृष्टि से आज भी विवादास्पद बना हुआ है, और अधिकतर विद्वान उन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं| पर कुछ विद्वान उन्हें समुद्रगुप्त का समकालीन मानने के पक्ष में है| स्वयं द्विवेदीजी अपने उपन्यास 'चारुचंद्रलेख' के एक गौण प्रसंग में कालिदास को शाकारी विक्रमादित्य का समकालीन सिद्ध करते हैं| कालिदास को समुद्रगुप्त और विक्रमादित्य दोनों का समकालीन मानने में कोई असंगति नहीं है| यदि कालिदास को दीर्घजीवी मान लिया जाए तो वे समुद्रगुप्त और उनके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय दोनों के समकालीन हो सकते हैं|

लोरिक या गोपाल आर्यक के इतिहास के संबंध में 'पुनर्नवा' में बताया गया है कि उसके पिता वृद्धगोप के पूर्व पुरुष मथुरा से शुंग राजाओं की सेना के साथ आकर हस्तद्वीप में बस गये थे| इसकी संगति इस रूप में बिठाई जा सकती है कि मगध से भारत के पश्चिमी हिस्सों में विजय अभियान के लिए गई किसी शुंग सेना के वापस आते समय वृद्ध गोप के पूर्वज मथुरा से आकर हल द्वीप में बस गये होंगे| जहाँ तक हलद्वीप की भौगोलिक की बात है, लोरिकायन में हल्दी नामक स्थान का वर्णन आता है, जहाँ एक लड़ाई होती है| उत्तरप्रदेश के बलिया जिल्ले में आज भी 'हल्दी' नामक गाँव है| द्विवेदी ने इसी हल्दी को हलद्वीप में बदल दिया है, जो व्युपत्ति की दृष्टी से असंगत नहीं है| हलद्वीप नाम की संगति इस प्रकार दिखाई गई है कि गंगा और महासरयु के संगम पर स्थित होने के कारण कम से कम बरसात में है तो 'हलद्वीप' द्वीप का रूप धारण कर लेता होगा| 'लोरिकायन' के लोरिक का जन्मस्थान 'गौर' नामक स्थान है, जो सरयू और उसकी किसी छोटी सहायक नदी वरमइनी के संगम पर अवस्थित है| गौरा भी बलिया जिल्ले में विद्यमान है| औपन्यासिक संसार के निर्माण के लिए इतना आधार पर्याप्त है|

'पुनर्नवा' के अनुसार हलद्वीप के राजा यज्ञसेन भारशिव नागवंश के थे| कानिपुर के राजाधिराज वीरसेन के सेनापति प्रवरसेन को जब काशी में नवम अश्वमेध यज्ञ के आयोजन का भार दिया गया, तो अपने पिछले अनुभवों के आधार पर उन्होंने निश्चय किया कि साकेत से पाटलिपुत्र तक कुषाण नरपतियों का जो भी प्रभाव अवशिष्ट रह गया हो उसे समाप्त कर दिया जाये| उनके पुत्र विजयसेन को अश्व रक्षा का भार दिया गया| उसी समय से हलद्वीप में भारशिवों का आधिपत्य हुआ| .....यज्ञसेन, विजय सेन के पुत्र थे और कान्तिपुरी की ओर से हलद्वीप का शासन करते थे| यज्ञसेन ने समझ लिया था कि आभीरों की सहायता के बिना वे इस प्रदेश में अधिक दिन तक नहीं टिक सकेंगे| भैरों और आभीरों की मैत्री सुदृढ़ करने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते थे| पर उनके पुत्र रुद्रसेन ने इस मैत्री में दरार पैदा कर दी| इसी रुद्रसेन को समुद्रगुप्त की सेना के बल पर हराकर गोपाल आर्यक हलद्वीप का राजा बनता है|

द्विवेदी ने उज्जयिनी का प्रसंग 'मृच्छकटिक' से लिया गया है| पुनर्नवा के पालक, वीरक, शकार, शर्विलक, चारुदत्त, वसंतसेना, धूता, मदनिका, आर्यक आदि पात्र और उनसे जुडी हुई अनेक घटनाएँ भी 'मृच्छकटिक' से ली गई है| 'मृच्छकटिक' के रचयिता शूद्रक का काल विवादास्पद है| कुछ विद्वान शूद्रक को कालिदास का वरिष्ट समकालीन मानते हैं तो कुछ विक्रमादित्य के समकालीन मानते हैं| इसका कोई प्रमाण नहीं है|

प्राचीन काल में उज्जयिनी में पालक नाम का एक राजा था लेकिन वह भगवान बुद्ध के समकालीन चंड प्रद्योत का पुत्र था| पुनर्नवा की कथा चौथी शताब्दी की कथा है, इसलिए ही ऐतिहासिक दृष्टि से यह पात्र संगत नहीं मानी जा सकती|

कथा की वास्तिविकता से कल्पना का समन्वय

'पुनर्नवा' का कथा संसार लोरिक चंदा की प्रसिद्ध लोक कथा, शूद्रक कृत 'मृच्छकटिक' की कहानी और कालिदास की लोकश्रुत जीवनी और साहित्य से निर्मित है| कथा में गौण रूप में गुप्त सम्राट समुद्र गप्त का प्रसंग आया है जो ऐतिहासिक पात्र है| समुद्रगुप्त लगभग 335 ई. में मगध की राजगद्दी पर बैठा था| द्विवेदी ने उनके युद्ध-अभियानों के साथ साथ उनके चरित्र की जो झाँकी प्रस्तुत की है, वह सर्वदा इतिहास सम्मत है| 'पुनर्नवा' का प्रमुख पात्र या नायक गोपाल आर्यक समुद्रगुप्त का महाबलाधिकृत और निकट का मित्र (नर्मसखा) है| यह तथ्य इतिहास सम्मत न होकर भी इतिहास विरोधी नहीं है, क्योंकि समुद्रगुप्त के बारे में जानकारी देनेवाला एकमात्र ऐतिहासिक साक्ष्य प्रयाग का शिलालेख है, जिसमें उसके विजय अभियान और विजित राजाओं के नाम तो उपलब्ध हैं, पर उसके सेनापतियो अथवा किसी युद्ध का विवरण नहीं मिलता| संभवतः ऐसे स्थलों पर कथाकार की कल्पना को अपनी सर्जनात्मकता दिखाने का पूरा अवसर मिल जाता है और द्विवेदी इसमें चूंके नहीं है| पर इस सिलसिले में तथ्य की एक छोटी सी भूल या उपेक्षा उपन्यासकार से हो गई है| 'पुनर्नवा' का समुद्रगुप्त उत्खात प्रतिरोपण की नीति में विश्वास करता है| 'उर्खात प्रतिरोपण' का तात्पर्य है, जिसे उखाड़ा उसे फिर से रोप दिया| जिस राजा का राज्य जीता, उसे ही अपना अधीनस्त राजा बना दिया| इसका केवल एक अपवाद है| हलद्वीप (गंगा और महासरयू के संगम पर स्थित कोई क्षेत्र)| जहाँ वे भार शिव नाग राजा रुद्रसेन को उखाड़ते है और सिंहासन पर आरोपित करते हैं महाबलाधिकृत और नर्मसखा गोपाल आर्यक को| पुनः मधुरा और उज्जयिनी पर विजय प्राप्त करने के बाद वे चंडसेन को, जो दोनों राज्यों के पूर्ववर्ती कुषण शासकों (धर्मधीष और पलक) के पितृव्य है, राजसिंहासन पर बैठाते हैं| पर ये तथ्य इतिहास सम्मत नहीं है| ऐतिहासिक दृष्टि से यह सही है कि समुद्रगुप्त ने अनेक

राजाओं पर विजय प्राप्त करके, उनके राज्य को अपने साम्राज्य में न मिलाकर, पराजित राजाओं या उनके वंशजो को पुनः राज सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था| पर यह तथाकथित उत्खात व प्रतिरोपण की नीति सर्वत्र नहीं अपनाई गई थी| प्रयाग अभिलेख के आधार पर इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि समुद्रगुप्त ने उत्तर भारत के राजाओं और गणराज्यों को नेस्तनाबूद कर, उन राज्यों को अपने साम्राज्य का अभिन्न अंग बना लिया था| हलद्वीप और मधुरा चूँकि उत्तर भारत में स्थित है, अतः इनका यही हश्र होना चाहिए| इनमें हलद्वीप की राजगद्दी पर आर्यक को प्रतिष्ठापित करने की बात तो उपन्यास की दृष्टि से आपत्तिजनक नहीं मानी जा सकती, पर मधुरा की राजगद्दी पर चडसेन को प्रतिष्ठापित करने की बात इतिहास की दृष्टि से संगत नहीं कही जा सकती| प्राचीन भारत के इतिहासकारों के अनुसार उत्तर भारत पर विजय प्राप्त करने के बाद समुद्रगुप्त ने पूर्वी किनारे से चलकर, दक्षिणापथ पर विजय प्राप्त की और वहाँ उसने पूरी तरह से तथाकथित 'उत्खान प्रतिरोप' की नीति का पालन किया| समुद्रगुप्त के पराक्रम से भयभीत होकर, अनेक प्रयत्न राज्यों के नरेशों ने बिना लड़े ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, जिनमे मालवा का राजा भी था| अतः मालवा पर समुद्रगुप्त की सेना का आक्रमण, विजय, और 'उत्खात प्रतिरोप' नीति की पालन ऐतिहासिक दृष्टि से सांगत नहीं जान पड़ती|

'पुनर्नवा' में आचार्य द्विवेदी ने 'लोरिकायन' और 'मृच्छकटिक' के प्रसंग को, कालिदास और चन्द्रगुप्त से जोड़कर एक बेजोड़ काल्पनिक संसार की सृष्टि की है| 'लोरिकायन' के कथानायक लोरिक, नायिका मैना, प्रमिका चनवा और उपनायक संवारू कहाँ तक ऐतिहासिक पात्र है, इसके संबंध में प्रामाणिक रूप में कुछ भी नहीं कहा जा सकता| पर लोक में कथा के इस प्रचलन को देखते हुए इन पात्रों के ऐतिहासिक अस्तित्व को नकारना कठिन है| संभावना यह है कि लोरिक किसी

छोटे-मोटे क्षेत्र का सरदार रहा होगा जो अपनी वीरता, प्रजावत्सलता, प्रेम आदि के कारण अत्यंत लोकप्रिय हुआ होगा| इतिहास ऐसे लोक नायकों की उपेक्षा कर जाता है, पर लोक-मानस उन्हें अपने गीतों के माध्यम से अमर बना देने में कोई भूल नहीं करता| लोरिक कथा के साथ भी ऐसा ही हुआ होगा| यह कथा लोक मानस द्वारा निर्मित हुई, परंपरा प्रवाह में इसमें अनेक परिवर्तन हुए, जिसमें तथ्य लगभग ढंक गया| मुल्ला दावुद जैसे सूफी कवियों ने इसका उपयोग किया, पर ऐतिहासिक की रक्षा वे भी नहीं कर सके| उपन्यास के लिए इस कथा की संभावनाओं की तलाश और उनका रचनात्मक उपयोग करके आचार्य द्विवेदी ने सचमुच अत्भुत सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है| इसके साथ द्विवेदी ने इस कथा की ऐतिहासिक संभावनाओं की भी उपेक्षा नहीं की है| लोककथा का लोरिक, जाति का अहीर है| अहीर आभीर का अभ्रंश है| ई. पू.प्रथम शताब्दी में ही भारत के पश्चिमी प्रदेशों पर आभीरों के आक्रमण होने लगे थे और उन्होंने महाराष्ट्र के उत्तरी हिस्सों, गुजरात तथा उसके आसपास के क्षेत्रों पर आधिपत्य कायम कर लिया था| समुद्रगुप्त के प्रयाग अभिलेख से ज्ञात होता है कि जिन जातियों ने बिना लादे उसकी अधीनता स्वीकार की थी, उनमें आभीर भी थे| 'पुनर्नवा' में लोरिक को 'गोपाल आर्यक' का अपभ्रंश मानकर दोनों को अभिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है|

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि कुषाण वंश की समाप्ति और गुप्त वंश के उदय के बीच उत्तरी भारत पर भारशिव नागों का प्रबल शासन था| उनके प्रमुख केन्द्र थे विदिशा, पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा| इस वंश के एक प्रास्म्भिक प्रतापी नरेश वीरसेन ने कुषाण राजाओं को पराजित कर मथुरा पर अपना आधिपत्य कायम किया था| उसने दस अश्वमेध यज्ञ भी किये थे| समुद्रगुप्त के प्रयाग अभिलेख से वह भी ज्ञात होता है कि उसने रुद्रदेव, नाग्दत्त, गणपति नाग, नागसेन नन्दिन, आदि राजाओं को हराकर उनके राज्य अपने साम्राज्य में मिला लिए थे| इन तथ्यों के

प्रकाश में आचार्यजी की हलद्वीप विषयक कल्पना औपन्यासिक दृष्टि से असंगत नहीं मानी जा सकती|

मथुरा के इतिहास के संबंध में 'पुनर्नवा' में प्रदत्त विवरण के अनुसार कुषाण राजाओं को भारशिव नाग राजाओं ने मार भगाया और मथुरा पर अपना आधिपत्य कायम किया| इस तथ्य की पुष्टि प्रामाणिक इतिहास ग्रंथों से होती है| पर द्विवेदी के अनुसार भारतीय नागों को आभीर राजा भद्र सेन के सैनिको ने लहुरावीर का जयकार करते हुए कुषाण राजा दिमित को इस प्रकार ध्वस्त कर दिया जैसे प्रचंड आंधी पेड़ों को उखाड़कर फेंक देती है| इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि भद्र सेन ने भारशिव नागराजा को मार भगाया था या कुषाण राजा दमित को| शायद दोनों को मार भगाया हो| 'पुनर्नवा' के अनुसार 'दिमित के पुत्र धर्मघोष ने भद्रसेन को दस वर्षों के भीतर ही भगा दिया| अब (समुद्र के स्थानारोहन के समय) वह कुषाण साम्राज्य के नए सपने देख रहा है|"

देशकाल-वातावरण

इस प्रकार द्विवेदी के अनुसार समुद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय मथुरा पर कुषाण राजा धर्मघोष का शासन था| 'पुनर्नवा' के अनुसार उज्जयिनी में उसी समय पालक नामक शक राजा राज्य करता था| एक स्थान पर आये उल्लेख के अनुसार 'मथुरा में इन्ही के सौतेले भाई उपवादत राज्य करते थे| दोनों भाइयों में परस्पर विश्वास और प्रेम बताया जाता था| परंतु साधारण प्रजा दोनों को म्लेच्छ समझती थी और दोनों से असंतुष्ट थी| केवल चंडीसेन के प्रति जनता में श्रद्धा रह गई थी| क्योंकि वे प्रजा की भावनाओं का आदर करते थे| मथुरा और उज्जयिनी एक ही वंश द्वारा शासित राज्य थे| पुनर्नवा में मथुरा और उज्जैन का जो इतिहास दिया गया है, उसमें ऐतिहासिक असंगति है| एक स्थान पर कुषाण राजा दमित के पुत्र धर्मघोष

को मथुरा का राजा बताया गया है और अन्यत्र उज्जयिनी के शक राजा पलक के सौतेले भाई उपवंदात को| सौतेले भाइयों के रूप में शकों और कुषाणो का संबंध संभव हैं, पर धर्मघोष और उपवंदात के एक होने की कोई प्रमाण नहीं मिलता है| इन राजाओं का नाम भारत के प्रामाणिक इतिहास ग्रंथो में नहीं मिलते|

पुनर्नवा में इतिहास सम्मत शक प्रभाव का उल्लेख करते हुए लेखक ने चौथी शती की मथुरा और उज्जयिनी नगरियों का वैभव चित्रित किया है| प्रस्तुत उपन्यास में अनेक ऐसे स्थल है जहाँ लेखक स्वयं तथा प्रमुख पात्रों के माध्यम से इतिहास की सूचना देता है| देवरात के जीवन परिचय में यौधेयों के शांगवंशी अग्निमित्र के साथ संबंध का संकेत, यवनों और कुषाण को परास्त करने में यौधेयों की भूमिका का उल्लेख तथा गांधार प्रदेश की पश्चिमोत्तरी सीमा पर हूणों के आक्रमण का प्रतिरोध, ऐसी ही सूचना है| सम्राट कनिष्क की कुषाण जाति, पश्चिमी सीमांत पर, हूणों से आक्रांत होकर भारत की ओर भागी थी| तब अनेक बार सीमा प्रदेश पर हूणों के आक्रमण हुए| द्विवेदी ने चौथी शती के प्रारंभ में गांधार के सीमन्त पर हूणों का आक्रमण और देवरात से उसका प्रतिरोध कराकर इतिहास की घटना को व्यक्ति में समेटा है|

लोकजीवन

परंपरा के रूप में भी द्विवेदी ने कुछ इतिहास प्रस्तुत किया है| वसंतोत्सव मानाने की परंपरा प्राचीन काल से ही 'होली' आदि के रूप में चली आ रही थी| मथुरा में कुषाण द्वारा पंचध्यानी बुद्धों की उपासना चलाना, भार- शिव नागों द्वारा पंचमुखी शिव की उपासना तथा आभीरों द्वारा पंचवृष्णिवीरों की उपासना, धर्म के क्षेत्र में प्रचलित परंपराओं का ऐतिहासिक उल्लेख है| शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल

परंपरा, एवं ब्राहमण आचार्यता राजनीति में राज्यभिषेक आदि वैदिक कर्मकाण्ड, अश्वमेधयज्ञ आदि की परम्पराएँ भी पुनर्नवा में लिखित है|

अनामदास का पोथा

'अनामदास का पोथा' औपनिषद कालीन रचना है| इसमें आध्यात्मिक विचार विभिन्न उपनिषदों से, विशेषकर 'बृहदारण्यक' और 'छान्दोग्य से लिए गए है|

कथा की वास्तविकता से कल्पना का समन्वय

प्रस्तुत उपन्यास का कुछ अंश इस प्रकार उपनिषदों से प्राप्त हुई है और कुछ उपन्यासकार ने अपनी कल्पना के माध्यम से जोड़ा भी है| उपन्यास में प्रस्तुत रैक्व, जाबाला, जानश्रुति, अरुद्धती, भगवती, ऋतंभरा, ऋजुका, मामा, जटिल मुनि आदि की कथा औपनिषद आधार के बावजूद वर्तमान रूप में कल्पित है| इस कथा के संबंध में कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है| औपनिष काल में जिस प्रकार के राजा होते थे, उसी से हेलमेल होने लायक पात्र है राजा जनश्रुति| उपन्यास के अन्य पात्र भी उस समय के अनुरूप ही सिद्ध हुआ है| 'रैक्व' का पात्र आधुनिक जनता को कुछ विचित्र लगता है क्योंकि उसे 'नारी' जाति का कुछ भी पता नहीं था| लेकिन जिन परिस्थितियों में उनका बचपन बीता था, उसी के अनुरूप ही उनका आचरण और व्यवहार था| उपनिषद काल में अध्ययन-अध्यापन का आधार ग्रंथ वेद थे| वेदों का वेद समझानेवाला इतिहास-पुराण, वैदिक ज्ञान की कुंजी माना जाता था| जो इतिहास-पुराण के ज्ञानी थे उसे 'बहुश्रुत' कहा जाता था|[16]

रैक्व ऋषि की कथा वास्तविक का रूप ग्रहण करती है| वे एक रथ के नीचे बैठकर अपना शरीर खुजला रहे थे| उनकी खुजली का उल्लेख उपनिषदों में मिल जाता है| इसी अवस्था में राजा जनश्रुति उनकी सेवा में उपस्थित हुए थे| लोग उन्हें

[16] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 27

राजा कहते थे और उपनिषदों में भी उन्हें राजा कहा गया है| राजा को जब पता चला कि छोटे छोटे आदमियों के जितने भी धर्म कर्म ज्ञान और पुण्य है, वे सर्वरथी रैक्व के पास पहूँच जाती है| राजा की आँखे रैक्व को देखकर आश्चर्य से फ़ैल गई| अंत में उपहार के साथ अपनी सुन्दर कन्या को भी जब राजा ले गए तो ऋषि ने कहा कि इस सुन्दर मुख के कारण तुम मुझे बोलने को बाध्य कर रहे हो| बाध्य होकर उन्होंने अपना उपदेश जानश्रुति को सुनाया| इस प्रकार कथा की वास्तविकता को लेखक ने काल्पनिकता के साथ मनोरंजक बनाया है|

ऐतिहासिक पात्र एवं अन्य पात्र

उपन्यास में 'मामा' का पात्र पूर्ण रूप से काल्पनिक है| उसी प्रकार माता ऋतं भरा द्वारा बताई गई ऋषि यज्ञ व्ल्क्य की कथा, मामा की कथा, वैश्वानर की साधना, समाज में स्त्री का स्थान, आदि कई प्रसंग काल्पनिकता के आधार पर प्रतीत होते है|

इस प्रकार देखें तो पता चलता है कि द्विवेदी के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा 'अनामदास का पोथा' में दार्शनिकता की बोझ अधिक और ऐतिहासिकता नहीं के बराबर है|

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में संस्कृति

भारतीय संस्कृति ज्ञानोन्मुख है| उसके मूल में अज्ञात को जानने की जिज्ञासा है| अहिंसा, प्रेम, सत्य, वैराग्य इन सब विभेदक तत्वों पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य उजागर किया है| आपके साहित्य का अधिकांश भाग सांस्कृतिक विचार धारा से अनुप्राणित है| डॉ. सत्यसागर शर्मा अपने एक लेख में लिखते है – "द्विवेदी का साहित्य गुप्तकालीन, बौद्धकालीन मध्यकालीन और आदि कालीन संस्कृति का संगम है| उसमें इस्लामी संस्कृति का पुट भी है| उनका

उपन्यासकार रूप ऐतिहासिक संस्कृति का आख्याता है, निबंधकार रूप भारतीय संस्कृति का विवेचन है और समीक्षक रूप भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धारक एवं उन्नायक है| संस्कृति और कला के व्याख्याता के रूप में उनका योगदान उल्लेखनीय है|"[17]

द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियाँ उनकी बौद्धिकता, चिन्तनशीलता और अनुभवी जीवन दृष्टि संपन्नता के मिश्रण है| द्विवेदी को, साहित्य के अनेक विद्वानों ने सांस्कृतिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए उन्हें महान भारतीय सांस्कृतिक स्रोत का महान उद्घोषक कहा है| वे संस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओ की सर्वोत्तम परिणति स्वीकार करते हैं| उनके चारों उपन्यासों में संस्कृति का समावेश खूब दिखाई देता है| यहाँ संस्कृति के प्रमुख तत्वों के आधार पर प्रस्तुत उपन्यास का विश्लेषण किया जाएगा|

बाणभट्ट की आत्मकथा

संस्कार

बाणभट्ट की आत्मकथा में उपन्यासकार आचार्य द्विवेदी ने हर्ष कालीन सामाजिक परिवेश, उच्च सामन्ती समाज से लेकर निम्न वर्गीय समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है| यहाँ ऊँच नीच, छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, ब्राह्मण-शूद्र आदि के भेद भिन्न भिन्न घटनाओं के माध्यम से व्यक्त किए हैं| भारतीय संस्कृति में हमेशा नारी को प्रमुख स्थान मिला है| फिर भी यहाँ नारी हमेशा दुखी है| प्रस्तुत उपन्यास में नारी की दयनीयता, पुरुष और स्त्री के बीच का भेद भाव, स्त्री का अपहरण, इच्छा के विरुद्ध विवाह तथा अंतरजातीय विवाह का निषेध आदि में स्पष्ट रूप से देखने को

[17] आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी और भारतीय संस्कृति (लेख), सत्यसागर शर्मा, पत्र साप्ताहिक स्वतंत्र भारत मई 1980, पृ : 5

मिलती है| देवपुत्र तुंवर मिलिन्द की कन्या चन्द्र दीधिति को रास्ते से अपहरण होता है| उपन्यास की नायिका निपुणिका एक जगह पर पूछती है कि "क्या स्त्री होना भी मेरे सारे अनर्थो की जड़ नहीं है?"[18] निपुणिका, उपन्यास की कल्पित किंतु सशक्त नारी पात्र है| बह महावराह की उपासिका थी| उसका विश्वास है कि पीड़ित नारी की रक्षा वह कर सकता है| निपुणिका के रूप में उपन्यासकार ने भारतीय नारी के आत्मबलिदान की बात अंकित की है| लेखक, भौतिक शरीर से ऊपर उठकर, आदर्शो के गुणों के आधार पर नारी तत्व की कल्पना करता हैं जिसे निपुणिका के रूप में मूर्तिमान करने का प्रयास किया है| निपुणिका अस्पृश्य कुल में पैदा हुई, और अपने प्रयत्न से समाज में प्रतिष्ठित हुई| इससे हमें सन्देश मिलता है कि स्वप्रयत्न से और सद्गुणों से नीच कुल के नारी भी समाज में उन्नत स्थान प्राप्त कर सकता है|

अपहृता नारी का दूसरा स्वरूप है महामाया भैरवी| उसने अपने को इस देश की लाखों लांछित और अपमानित बेटियों में से एक बताया था| उपन्यासकार ने इसके द्वारा ऐसे एक चरित्र का निर्माण किया है, जो तत्कालीन अव्यवस्थित एवं रास्ते से भटकते लोगों को एकत्रित कर दें, राष्ट्र महिमा एवं एकता बनाये रखे, ह्रासोन्मुख मानवता एवं नैतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा कर दे, देश में शांति, प्रेम, ममता, सहानुभति, त्याग आदि मानवीय भावों को जगा दें|

आर्थिक दृष्टि से निम्न व्यक्ति को समाज हमेशा हेय दृष्टि से देखता है| जैसे ही वह आर्थिक दृष्टि से संपन्न हो जाता है, वैसे ही उसकी सामाजिक मर्यादा एवं प्रतिष्ठा ऊपर उठ जाती है| किसी समय अदृश्य समझी जानेवाली से निपुणिका का संबंध है लेकिन अर्थ संपन्न होने पर उसकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आ जाता है|

[18] द्विवेदी ग्रंथावली, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 1, पृ : 207

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलता है| महाराजाधिराज श्री हर्षदेव के भाई कुमार कृष्णवर्धन के घर पुत्र का जन्म हुआ है और उसका नाम संस्कार होने जा रहा है| "बाणभट्ट ने राज मार्ग पर बड़ी धूमधाम देखी| जुलूस में स्त्रियाँ, वधुएँ बहुमूल्य शिविकाओं पर आरूढ़ थी| साथ चलनेवाली परिचायिकाओ के नूपुरों के शब्द का दिगंत शब्दायमान हो उठा था| वेग पूर्वक भुज लताओं के उत्तोलन के कारण मणि जडित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थी| इससे बहुलताएँ भी झंकार करने लगी थी| निरंतर गुलाल और अबीर के उड़ते रहने के कारण उनके केश पिंगल वर्ण के हो उठे थे और उनके मनोरम गान से सारा राज मार्ग प्रतिध्वनित हो उठा था|"[19]

उज्जयिनी नगरी सांस्कृतिक वैभव से परिपूर्ण है| महाकाल की आराधना वहाँ की परंपरा है| नाटक के अभिनय की कला भी खूब प्रचलित है| नाटक देखने के लिए नगर की साधारण जनता के अलावा गप्यमान्य व्यक्ति भी उपस्थिति होते रहे है| एक दिन बाण भट्ट का लिखा हुआ एक प्रकरण उज्जयिनी में अभिनीत होनेवाला था| वहाँ परम भट्टारक के उपस्थित होने की भी संभावना थी| "महाकाल नाथ की सांध्यआरागिका के बाद प्रेक्षागृह में लोग जमा लगे| नगरी के सभी संभ्रांत नागरिक यथास्थान बैठ गए| नगाड़ा बज उठा और मैं ने आडम्बर के साथ पूर्वरंग की विधि का अनुष्ठान किया| गायक और वादक यथास्थान बैठ गए और नर्तकियों के नूपुर झंकार के साथ ही वीणा, वेणु, भुरज और मृदंग मुखरित हो उठे| मैं जब भृंगारधर और जर्जर्धर के साथ जर्जर स्थापना के लिए रंग भूमि में आया, तो सामाजिकों में अपार औत्सुक्य देखकर गदगद हो गया|"[20]

[19] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 13

[20] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 17

उज्जयिनी में कला का काफी सम्मान था| नाटक में राजा, उच्च पदाधिकारियों, जन साधारण की भी अभिरुचि थी| यहाँ तक कि महाराजाधिराज ने स्वयं 'रत्नावली' नाम से एक सुन्दर नाटिका लिखी है| इसमें उन्होंने बुद्ध की प्रार्थना नहीं की है – बल्कि पार्वती और लक्ष्मी के नाम लेकर शिव और हरी की प्रार्थना की है| उस समय नाटक में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी भाग लेती थी| बाण भट्ट की नाटक मण्डली में निपुणिका का समावेश इसी तथ्य की ओर संकेत करता है| कला की आराधना के साथ तत्कालीन समाज में उत्सवों का अपना स्थान है| संभ्रात समाज में मदनोत्सव बड़े उत्साह और समारंभ के साथ मनाया जाता था| उस दिन कुमारियों का व्रत रहता है| वह दिन मदन पूजा के दिन के नाम से जाना जाता था| निपुणिका स्त्री वेश में बाण को राजकुल के मदनोत्सव के बारे में बतलाती है – "यह ध्वनी मदनोद्यान से आ रही है, सुदक्षिण! आज चैत्र शुक्ल त्रयोदशी है| आज मदन पूजा का दिन है| आज कुमारियों ने व्रत धारण किया होगा, कामदेव की पूजा की होगी, और वरदान में अपने अभिलषित वरों की माँग लिया होगा| कान्यकुब्ज में यह उत्सव बड़े आडंबर के साथ मनाया जाता है| आज मदनोद्यान में कुमारियों ने फूल चुने होंगे, कुंकुम और अबीर का तिलक लगाया होगा और लाक्षारस से भूर्जपत्र पर अपने-अपने अभिलषित वरों की प्रतीमा बनाकर चुपके से भगवान कुसुम सायक को भेंट किया होगा| आज अंतपुर में बड़ी धूमधाम होगी| अशोक में दोहद उत्पन्न करने के लिए अंतः पुरिकाएं प्रमदवन में चली गई होगीं| वहाँ आज मदिरा और मृदंग का उत्सव चल रहा होगा| भट्ट नहीं सुदक्षिणे, आज युवतियों के आनंद केलि का उत्सव है|"[21] इसी प्रकार मदनोत्सव का एक अन्य चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास में देखा जा सकता है| "आज फाल्गुन की पूर्णिमा थी आज कन्या कुब्जों के प्रमत्त

[21] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 25

मदनोत्सव का दिन था| सारा नगर पुरवासियों की करतल ध्वनी, मधुर संगीत और मृदंग के घोष से गूँज उठा था| मधुमत्त नगर विलासिनियों के सामने जो भी पुरुष पड़ जाता था, उस पर श्रृंगक पिचकारी के रंगीन जल की बौछार हो जाती थी| बड़े-बड़े चौराहे मर्दल के गंभीर घोष से और चर्चरी ध्वनी से शब्दायमान हो रहे थे| ढेर का ढेर संगठित अबीर दसों दिशाओं में ऐसा अदा था कि दिशाएँ रंगीन हो उठी थी और नगरी के राज पथ के सर मिश्रित विष्टान से इस प्रकार भर गए थे, जैसे उन पर उषा की छाया पड़ी हुई हो| ..... लाल पिष्टातक पंक से भरकर सिन्दुरमय उठे थे|"[22]

मदनोत्सव के अवसर पर प्रति वर्ष सरस्वती मंदिर के पास समाज बैठा करता है| 'समाज' में नगर की लक्ष्मी शोभा की खान कला की स्रोतस्विनी परमशील गुणान्विता गणिका चारुस्मिता का मयूर और पद्य नृत्य होनेवाला था| हर साल 'समाज' की व्यवस्था 'छोटे महाराज' की ओर से होती थी| नाना दिग्देश से समागत कवि, कलाकार और गणिकाएँ नृत्य गीत की प्रतियोगिता में भाग लेती थी| नाना विध काव्य समस्याएँ, मानसी काव्य क्रिया, पुस्तकवाचन, दुर्वाचक योग, अक्षर मुष्टिक आदि कलाओं से सभी नागरिकों का मनोविनोद होता था|

विकसित नृत्य कला से हमारी सांस्कृतिक समृद्धि का आभास होता है| नृत्य के भी अनेक प्रकार है| प्रस्तुत उपन्यास में चारुस्मिता के नृत्य के संदर्भ में मयूर और पद्य नृत्य का उल्लेख हुआ है| चारुस्मिता जैसी नर्तिकी का नृत्य राज पुरुषों के अतिरिक्त और किसी को नहीं दिखाया जाता | आज पहली बार चारुस्मिता का नृत्य नागरिक देखेंगे क्योंकि चारुस्मिता कान्य कुब्ज की सबसे श्रेष्ठ गौरव भूत गणिका है| इसलिए निश्चित रूप से चारुस्मिता का नृत्य कौशल के लिए नागरिकों की बाढ़ आ जाएगी| सरस्वती मंदिर के सामने विशाल प्रेक्षाशाला बनी हुई है|

[22] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 25

विराट पतवास शाल प्रांशु सोलह खंभों पर टिका हुआ था| वह क्रमशः नतोदर भूमि को छाए हुए थे| सभापति का आसन प्रफुल्ल शतदलों से सजाया हुआ था| सभापति की दाहिनी ओर संस्कृत के कवियों के लिए आसन बनाये गए थे और बाई ओर प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों के लिए| सभापति के पीछे अधिकारियों के लिए स्थान बने हुए थे और दाहिनी ओर के एक पार्श्व में पर्दा के पीछे संभात महिलाओं के लिए स्थान थे| सभापति के सामने और वाम ओर के पार्श्व में समस्त नागरिकों के लिए स्थान बने थे| रंग भूमि ठीक बीच में थी और उसमें अभ्रक से मिला हुआ पिष्टातक चूर्ण बिछा हुआ था| यह मयूर या पद्य नृत्य का आधार था| इसी प्रकार आभीर जाति में प्रचलित नृत्य का भी इसमें वर्णन है – "दिन ढलने के पश्चात लगभग एक कोस जाने पर आभीर युवतियों एक दल नृत्य गान करता हुआ मिला| मर्दल मुरज और मुरली बजानेवाले दो-तीन किशोर वय युवकों के अतिरिक्त पुरुष उसमें थे ही नहीं| स्त्रियाँ तरंगायित उपांतवाली लाल शाटिकाएँ पहने हुए भी और नीम कंचुक के ऊपर हारिद्र उत्तरीय धारण किए हुए थे| वे उन्मत्त भाव से नाच रही थी| उनके आधूर्णन वेग से तरंगायित शाटिकांत इस प्रकार भ्रमित हो उठता मानो अनुराग के समुद्र में वात्याचक चंचल हो उठा हो| उनकी चारियाँ तुलानुग नहीं थी, परंतु इतनी उद्दाम थी कि उनके हारिद्र उत्तरीय और नील कंचुकों का एक धूर्णमान चक्रवाल तैयार हो जाता था| दीर्घ वेनियाँ मटकन-झटकन के वेग से धरती और आकाश को काली मसृण रेखाओं से पूर्ण कर देती थी| बार-बार ऊपर नीचे आनेवाले लाल करतल आकाश रूप नील सरोवर में अन्धामुख स्वर्ण कमलों की शोभा भर देते और क्षीण कटी भ्रांत झंझा में बार बार झटका खाती हुई पर्वतीय शतावरी लता की भाँती दर्शक को चिंतापरायण बना देते न जाने कब कौन-सा झटका उन्हें मरोड़ दें|"[23]

[23] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 112

बैशाखी पूर्णिमा के दिन तथागत ने जन्म ग्रहण किया था और इसी दिन निर्वाण भी प्राप्त किया था| तथागत के जन्मदिन के उपलक्ष्य में आयोजित उत्सव का चित्रण करते हुए उपन्यासकार लिखता है – "वीथियाँ सुगंधी से रिक्त थी| पौर भवनों में मंगल पताकाएँ सुशोभित हो रही थी, राज मार्ग की ओर के सभी वातायन मालतीदाम से अलंकृत हो रहे थे और पौरजन नवीन वस्त्र भूषा से सुसज्जित थे|"[24] ....."राजमार्ग श्वेत वस्त्र धारी नागरिकों से पूर्ण था| उनके वस्त्र उष्णीय अंगराग और माली सभी श्वेत थे| ऐसा जान पड़ता था, सब लोगों ने रजत धारा में स्नान किया है| ऊपर सौंध वातायनों से युवतियों के स्वर्णअलंकारों की पीली प्रभा व्याप्त हो रही थी| नीचे की श्वेतच्छटा के ऊपर सौंध-वातायनों की सौवर्ण-च्छटा ऐसी मनोहर मालूम हो रही थी, मानो कैलास पर्वत पर शरत्कालीन प्रभावित धूप फैली हुई हो|"[25]

भारतीय समाज में वरेप्य व्यक्ति के अभिवादन की परंपरा बहुत पुरानी है| राजकन्या भट्टिनी लोरिकदेव के इलाके में पहूँची तब लोरिकदेव ने तलवार खींचकर उसका अभिवादन किया| उपन्यासकार लिखता है – "पुरोहित ने शंख ध्वनी की| देखते देखते देवपुत्र नंदिनी के जय निवाद से दिशाएँ काँपने लगी| लोरिकदेव ने अपनी बत्तीस अन्गुलों की विकराल असी को ऊपर उठाया, उसे देखते ही मल्लों की लाठियाँ खडखड़ा उठी| सभी अपने स्थान पर अडिंग रहे| एक क्षण में लाठियां तडतडा उठी और सारा जन समाज भट्टिनी की जय ध्वनी से मुखरित हो गया | लाठियों के दो मंच बन गए| थोड़ी ही देर में कुमारियों ने श्रृंगार रस से सराबोर द्विपदी खण्ड का गान गाया, छोटे-छोटे काष्ठ-खण्ड खडखड़ा उठे, उस कर्कशता की

[24] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 113

[25] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 134

पृष्ठभूमि में कुमारी कंठ की सुरीली तान बहुत मीठी लग रही थी| शीघ्र ही मल्ल लोग पुनः वर्तुलाकार में खड़े हो गए और मध्य वर्तुल की कुमारियाँ सिमट कर एक हो गई यह निपुण भाव से निरीक्षण करनेवाले की भी समझ में नहीं आया| जितना उत्ताल उतना ही तालानुग था| फिर विकट रासक नृत्य चलने लगा| थोड़ी देर के लिए तो ऐसा जान पड़ा कि भूतों के उत्सव में पार्वती बैठी हुई है| कंटकी चंद्रमल्लिका की भाँती वह प्रफुल मनोहर वादन अपने आप में परिपूर्ण था| वह उद्दाम मनोहर नृत्य चलता रहा, कांस्य कोशी की झंकार चलती रही तथा मुखर नुपुर विराव के साथ काष्ठ खडकी टंकार विचित्र ध्वनि से दिगंत्राल को मुखरित करती रही| इस प्रकार स्वागत नृत्य चलता रहा|"[26]

भट्टिनी के पीछे वाले मंच पर लोरिक देव अपनी रानी के साथ बैठे थे| अतिथि को सम्मान देना हमारी संस्कृति है| एक बार नृत्य थोड़ी देर के लिए रुका| पुरोहित की शंख ध्वनि के साथ मंत्री ने धूप दीप नैवेद्य से अतिथि का सत्कार किया| मल्लराज लोरिकदेव ने चाँदी के थाल में नारिकेल, पुंगीफल और तांबुल पात्र से भट्टिनी का स्वागत किया| आधी रात तक चले इस उत्सव की समाप्ति का दृश्य इन शब्दों में द्विवेदी व्यक्त करते है – "पुरोहित ने दीर्घ दीर्ध्वायितशंख ध्वनि से दिगंतर काँपा दिए| नृत्य-गीत वाद्य की गगन विदारी ध्वनी के बीच यह अर्ध्यदान समाप्त हुआ| मल्ल लोग संयत गति से तितर बितर हो गए| कुमारियों ने अभिराम भंगी से भट्टिनी को उठाया और देर तक नृत्य गति से उस छोटे घर को प्रतीप्त कर रखा|"[27]

बौद्ध संस्कृति क्षमा और करुणामयी है| आचार्य पाद के माध्यम से यह तथ्य प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्ट रूप से अभिव्यंजित हुई है| आचार्य पाद कहते हैं कि तर्क वस्तु ही गलत है| भगवान् ने जीवन में करुणा को प्रतिष्ठित करना चाहा था जिसमे

[26] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 180

[27] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 180

वह करुणा नहीं, वह सौगात नहीं, वह सद्धर्म का सत्यानाश करता है| तर्क से विद्वेष बढ़ता है| विद्वेष से हिंसा पनपती है और हिंसा से मनुष्यता का विध्वंस होता है|[28]

चंडी मंदिर का वातावरण उपन्यासकार ने इस प्रकार चित्रित किया है – "चंडी मंदिर के बाहर लोहे के छड़ो का बना हुआ एक विराट कपाट था, जिसके भीतर से चंडी की मूर्ति स्पष्ट दिखाई दे रही थी| देवी के सामने एक लोह वेदिका पर कज्जल के सामान काला भैंसा स्थापित था, जिसके सारे शरीर पर भक्तजनों ने लाल थापे दे रखे थे| ऐसा लगता था कि वह साक्षात् यमराज का वाहन है और यमराज ने रक्ताक्त हाथों से थप्पड़ मार मार कर उसे चलाया है| देवी के चरणों के पास एक छोटी वेदी थी, जिस पर कोई लाल लाल वस्तु दिख रही थी| .....इसी प्रांगण से सटा हुआ एक घर था, जो बाहर से गुफा जैसा दिखाई दे रहा था जान पड़ता था, किसी समय एस घर में कोई भैरव अपनी भैरवी के साथ वाममार्गी साधना किया करते थे, क्योंकि उन चिन्हों का यही अर्थ हो सकता है|"[29] प्रस्तुत विवरण में सिद्धों, तांत्रिकों एवं वामामार्गियों की साधना पद्धति द्वारा तांत्रिक साधना का सजीव वातावरण प्रस्तुत किया है जो हमारी संस्कृति की प्रमुख विशेषता है| उपन्यासकार ने अपनी इस रचना में हर्ष युगीन बौद्ध साधना, कौल साधना, एवं वैष्णव साधना आदि विविध साधना मार्गो के स्वरूप का परिचय कराते हुए धार्मिक मिथ्याचार का विरोध किया है| अलौकिक सिद्धियों के लोभ में अंधविश्वासपूर्ण जड़ तांत्रिक क्रियाओं में लिप्त रहनेवाला द्रविड़ साधू इसी मिथ्याचार का उदहारण है|

लोक मंगल की भावना भारतीय संस्कृति की अपनी सम्पति है| द्विवेदी ने प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा इस सत्य का उद्घाटन किया है कि झूठ से व्यक्ति का सत्य

[28] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 54

[29] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 181

डगमगाने लगता है| इसलिए अघोर भैरव बाण से कहता है – "डरना नहीं चाहिए| जिस पर विश्वास करना चाहिए उस पर पूरा विश्वास करना चाहिए चाहे परिणाम जो भी हो| जिसे मानना चाहिए उसे अंत तक मानना चाहिए|"[30]

व्रत, उपवास, प्रसाद वितरण आदि का चित्र भी प्रस्तुत उपन्यास में देखा जा सकता है| उपन्यास में कुछ धार्मिक अनुष्ठान के पश्चात् महामाया भैरवी ने बड़े आदर और स्नेह के साथ बाण भट्ट को प्रसाद दिया| प्रसाद में मधु अदरख भुना हुआ कंद तथा अपराजिता पुष्प के कुछ दल थे| बाण भट्ट ने भक्ति पूर्वक प्रसाद ग्रहण किया| देवी-देवताओं के पूजा पाठ का नियम है| इसलिए बाण भट्ट ने युवक के समक्ष जब वज्र तीर्थ देवी के दर्शन की जिज्ञासा रात में प्रकट की तो युवक ने कहा कि वज्र तीर्थ की देवी का दर्शन रात्री में निषिध है, उस समय वहाँ साधक लोग आते हैं, गृहस्थ का उधर जाना ठीक नहीं है|

वेशभूषा तथा वस्त्राभूषण का चित्रण भी उपन्यास में मिलता है| स्त्री पुरुष भिन्न भिन्न स्तर के वस्त्र और आभूषण पहनते थे| अंतपुर में नियुक्त सेवक लम्बे श्वेत कंचुक धारण किया करते थे| ब्राह्मण शुक्ल धुत उत्तरीय धारण करते थे| शुक्ल अंग राग एवं शुक्ल पुष्पों की माला उनके प्रिय श्रृंगार थे| कवि तथा कलाकार अपने अपने अंगों को विशेषतः पुष्पों से सुसज्जित किया करते थे| धूपित केशों को सजाने-सँवारने में धावक की तरह वे लोग सिद्ध हस्त थे| बौद्ध भिक्षु पीले रंग का चीवर धारण करते थे| वैष्णव शाक्त के समन्वित रूप में विश्वास रखनेवाली साधिकाये पीत कौशेय वस्त्र धारण किया करती| योगी पीले वस्त्रों से बनी हुई कंथा धारण किया करते थे, हाथ में टेढ़ी लकड़ी, कानों में रुद्राक्ष, वराह माला आदि का विधिवत प्रयोग करते थे| गणिकाएं अलक्तक लगाया करती थी| चीनांशु जैसे कीमती वस्त्र

[30] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 62

उन्हें प्रिय थे| पैरों में नूपुर, कानों मे कुंडल, ललाट पर लाल मणि आदि का प्रचलन गणिकाओ में अधिक थे| वे वैभव और आदर का जीवन व्यतीत करती थी| वक्ष स्थल को चन्दन से उपलिप्त करने की परंपरा उस समय थी| गजमुक्ताओं से बना हुआ हार, मुजमूलो में इन्द्रनील मणि द्वारा खचित केयूर कानों में उत्पल आदि आभूषण राजा पहनता था|

वर्ण

भट्टिनी के माध्यम से द्विवेदी ने जातिवाद का विरोध करके, आधुनिक युग चेतना को इन शव्दों में स्वर दिया है – "तुम यदि किसी भवन कन्या से विवाह करें तो इस देश में यह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा| परंतु यह क्या सत्य नहीं कि यवन कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण कन्या भी मनुष्य है|"[31]

बाण भट्ट की आत्मकथा में वर्ण व्यवस्था का उद्घाटन किया गया है जो भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है| भारतीय समाज ब्राहमण को सम्मान की दृष्टि से देखनेवाला है| उनका काम पठन-पाठन, पूजा पाठ, शास्त्र चिंतन, धर्म की व्याख्या एवं व्यवस्था देना था| स्त्रियाँ पहले पुरुषों को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करती थी| "छोटी गृहस्थी में तुम्ही श्रेष्ठ व्यक्ति हो| तुम पुरुष हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम पण्डित हो, तुम देवता हो उन्हें भोजन कराए बिना भट्टिनी भोजन ग्रहण कैसे करेगी|"[32] ब्राह्मण समाज की सार्थकता का स्पष्ट उदाहरण है – "मेरा गृह यज्ञ धूम कालिमा से दिशाओं को धवल बना देगा| फिर मेरे द्वार पर वेद मंत्रो का उच्चारण

[31] बाण भट्ट की आत्म कथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 33

[32] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 46

करती हुई शुक-सरिकाएँ बटुकजनों को पद-पद पर टोका करेंगी| मैं अब वात्स्यान वंश का कलंक कदापि न रहूँगा|"[33]

धर्म

उन दिनों समाज में धार्मिक मिथ्याचार प्रचलित थे| अपना जीवन कमाने के लिए लोग धर्म का गलत फायदा उठाया है जिसका उदाहरण है पूजारी बाबा| लेकिन द्विवेदी, धर्म को व्यापक रूप में देखना चाहता है| इस लिए सामवेर बाण भट्ट से कहता है – कान्य कुब्ज विचित्र देश है भद्र! यहाँ ऊपरी आचार को बहुत महत्व दिया जाता है और भीतर के तत्व को समझने का प्रयत्न कम किया जाता है| क्या ब्राह्मण और क्या श्रमण सभी बाह्य आचारों को ही बहुमान देते है| स्वयं महाराजाधिराज श्री हर्ष देव भी इस बात से अस्पृष्ट नहीं कहे जा सकते|"[34]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में मूर्ति पूजा का विवरण उपन्यासकार ने किया है जो भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है| तुलसी की आराधना भारतीय संस्कार में देखा जा सकता है| प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार लिखता है – "दूकान के पीछे एक छोटा सा आँगन था, उसके बीचों बीच तुलसी का एक वृक्ष था| पास में एक छोटी सी वेदी थी और उस पर महावराह की एक अत्यंत भव्य मूर्ति रखी थी|"[35]

हमारी संस्कृति हमेशा धर्म को लेकर ही आगे बढ़ता है| धर्म का विस्तृत अर्थ भारतीय आचार्यों ने हमें सिखाया है| यदि किसी के झूठ बोलेने से निर्दोष व्यक्ति के प्राणों की रक्षा हो जाती है तो वह अधर्म नहीं, अपितु धर्म ही कहलायेगा| यही उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है – "जितने

[33] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 21

[34] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 50

[35] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 20

बंधे बाधाएँ नियम हैं और आचार है, इनमें धर्म अंटता नहीं| वह नियमों से बड़ा है, आचारों से बड़ा है| मैं जिनको धर्म समझता रहा, वे सब समय और सभी अवस्था में धर्म ही नहीं थे, जिन्हें अधर्म समझता रहा, वे सभी सब समय और सभी अवस्था में अधर्म ही नहीं कहे जा सकते|"[36]

चारुचन्द्रलेख

दर्शन

आध्यात्मिकता भारतीय संकृति का प्रमुख तत्व है| चारुचन्द्र लेख नामक उपन्यास में आध्यात्मिकता सर्वत्र दिखाई देता है| पुनर्जन्म का सिद्धांत इससे जुड़ा हुआ होता है| रानी का सातवाहन से कथन है – "मैं जानती थी कि अब तक मेरे जितने जन्म हुए सब से मैं तुम्हारी रानी थी| परंतु मैं यह भी जानती हूँ कि अगले जन्म में तुम मुझे रानी के रूप में नहीं पा सकोगे| यह क्या अत्भुत बात नहीं है महाराज?"[37]

आध्यात्मिक साधना के बारे में सीदी मौला महाराज सातवाहन से कहते है – मैं एक मठ में उपस्थित हुआ, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही साधू वेश में साधना करते थे| वहाँ कुछ दिन रहकर विचित्र साधना का सन्धान पाया सुनोगे महाराज? सुनकर तुम समझ सकोगे कि आध्यात्मिक शक्ति का संधान पाकर यदि मनुष्य अंतःकरण और बाह्य जगत का सामंजस्य नहीं खोज सका, तो भयंकर तमोगुण का शिकार हो जाता है|"[38]

---

[36] बाणभट्ट की आत्मकथा, आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 224

[37] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 29

[38] चारुचन्द्रलेख, पृ : 21

भारतीय संस्कृति कर्मफल पर विश्वास रखते है| इस उपन्यास में विद्याधर भट्ट चंद्रलेखा की माँ से कहता है – हाँ माता, कर्मफल को कौन अन्यथा कर सकता है? आज महाशिवरात्रि का दिन है| तू विश्वेश्वर के मंदिर में ऊर्द्ध रात्री तक भक्ति से प्रतीक्षा कर|"[39]

इस संसार 'माया' से वलयित है| माया मोह से मन को दूर रहने से ही मुक्ति संभव होती है, यही भारतीयों का विश्वास है| माया का स्पष्टीकरण करते हुए उपन्यास में भगवती से गुरु गोरक्षनाथ कहते है – "माया हमारे मन में है, बुद्धि में है, हमारे संपूर्ण अंतःकरण में, यह हमारी ही सृष्टि है| सारे जगत को भूलकर अपनी मुक्ति की चिंता करना सबसे बड़ी माया है| सारा संसार इस माया के जाल में फँसकर भटक रहा है|"[40] योगियों के तंत्र मन्त्र साधना, उपासना साधना आदि उपन्यास में कई जगहों पर मिलते है| आत्मा-परमात्मा एवं शक्ति तथा भौतिक शक्ति की चर्चा करते हुए सीदीमौला सातवाहन से कहते है – "ब्रह्माण्ड में ऐसा कुछ नहीं है महाराज, जो पिण्ड में न हो| शक्ति चाहे देवी हो, भौतिक हो, आध्यात्मिक हो, एक है और वह पिण्ड के भीतर विद्यमान है|"[41]

ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया का आविष्कार प्रस्तुत उपन्यास में देखा जा सकता है| भगवती ने प्रसन्नता प्रकट कर कहा – "भगवान को जब लीला विस्तार की इच्छा हुई तो उनके ज्ञानमय चिन्मय वपु ने दो दिशाओं में चलकर रूप परिग्रह किया| एक तो उसकी विलास लीला इच्छा के रूप में और दूसरी क्रिया के रूप में अभिव्यक्त हुई, यही कारण है कि ज्ञान इच्छा और क्रिया रूप में यह जगत त्रिधा विभक्त है| नवल

[39] चारुचन्द्रलेख, पृ : 161

[40] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 161

[41] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 59

किशोरजी ने इसका स्पष्टीकरण किया है|"[42] अकेला ज्ञान (राजा) असमर्थ है वह इच्छा शक्ति (रानी)के संयोग से सिद्धि की ओर बढ़ता है, लेकिन इच्छा, क्रिया से योग (मैना) कराकर भटक जाती है| इच्छा के अभाव में ज्ञान निष्क्रिय है| अतः क्रिया भी सफल नहीं होती| ज्ञान को जब तक पुनः इच्छा शक्ति मिलती है, तब तक क्रिया शक्ति समाप्त हो चुकी होती है|"[43] उपन्यास में राजा सातवाहन रानी चंद्रलेखा तथा मैना द्वारा ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया का संकेत प्राप्त होता है|

उपन्यास में भिक्षु का कथन है – "यह स्थूल शरीर आवरण मात्र है| इसके भीतर एक भाव शरीर है, जिसमें भाव लहरियाँ प्रत्येक क्षण उद्वेलित हो रही हैं| भाव स्थूल रूप ले सकते है| यह जो मनुष्य शरीर के भीतर कल्पना करने की अपार शक्ति है, अन्तःकरण में लाख लाख वृत्तियों का जो उद्वेलन हो रहा है, वह मिथ्या नहीं| भाव जगत में जो कुछ अनुभूत होता है वह सब स्थूल जगत में प्रत्यक्ष हो सकता है| भाव जगत में यदि तुम रोग मुक्ति सोचो तो स्थूल जगत में भी रोग मुक्ति हो सकती है,होती है|"[44]

वर्ण

प्रस्तुत उपन्यास में समाज की वर्ण व्यवस्था देखा जा सकता है| उपन्यास के पात्र विद्याधर भट्ट एवं धीर शर्मा ब्राह्मण है| अध्यापन उनका कर्म है| इसमें गोपाद्री दुर्ग के शैव मठ की बात बताई गई है| इस मठ के नेता नेहनानंद थे| यहाँ किसी एक संप्रदाय के साधू लोग तपस्या करते थे| भंभुल अपना परिचय राजा सातवाहन को देता है – "नट हूँ महाराज! छोटी जात का नहीं, कारूनट हूँ| और नटों

[42] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृ : 205

[43] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृ : 205

[44] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 54

से हम अलग है| वे छोटी जात के होते है, हम लोग राजपूत है| नाटी माता तो हमारी ही जात की है न महाराज| उन्होंने हमारे कुल को तार दिया है|[45] इस कथन से जाति संप्रदाय का उल्लेख हमें प्राप्त होता है| उस समय की जनता अपने कुल तथा जाति पर गर्व करनेवाले थे| लोगों को सिद्धियों के पीछे भागने की आदत थी| रानी जनता को समझाते हुए कहती है – "यह सब मिथ्या है| सिद्धियों के पीछे पागल बनने की इस प्रथा ने वर्णाश्रम धर्म को भ्रष्ट कर दिया| कायरों और भगोड़ो को अपना नेता समझनेवाली जाति की दशा जो होनी चाहिए, वही आज इस जन समूह की दशा होंगी|"[46]

संस्कार

भारतीय संस्कृति में प्रकृति का अपना महत्वपूर्ण स्थान है| 'प्रकृति' को भारतीय संस्कृति 'माँ' के रूप में स्वीकार करते है और उसकी पूजा भी करते है| प्रकृति के कण-कण को हम आदर करते है| सूर्य, वर्षा, अग्नि आदि को प्रसन्न करने के लिए कई पूजाएँ हमारे यहाँ किया जाता है| प्रकृति मानव के आनंद एवं उल्लास का रूप ही है| मानव और प्रकृति का अटूट संबंध है| द्विवेदी ने चारुचन्द्रलेख में प्रकृति के यथार्थ और काल्पनिक चित्र खींचा है| इसमें सातवाहन ने प्रातःकाल उठकर प्रकृति का रूप देखा, "ऐसी शांत निस्तब्धता बड़े भाग्य से ही देखने को मिलती है| ऐसा जान पड़ता था कि प्रकृति अत्यंत सावधान होकर सुधाकांड के मुख पर झीना वस्त्र डालकर छना हुआ अमृत धरती पर उड़ेल रही है|"[47]

प्रकृति के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार ने पाठकों को अपनी रचना की ओर आकृष्ट किया है| प्रस्तुत उपन्यास में संध्या का वर्णन इस

[45] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, पृ : 319

[46] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली , पृ : 157

[47] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 309

प्रकार उन्होंने की है – "आकाश का पूर्वी छोर माँ की उदय गूढ़ रश्मियों से उद्भासित हो उठा| घनच्छाय कपित्थ और खदिर के वृक्षों की शिखाएं उनकी सूचना मात्र से दमक उठी| ऐसा जान पड़ा जैसे वनस्थली में कुछ नई आशा की ज्योति प्रकट होनेवाली है| पूरब दिगंचल चंचल हो उठा वृक्षों के झाँझरे परदे के भीतर से प्राची दिशा रूपी वधू का मनोहर मुख अब भी साफ़ नहीं दिखाई दे रहा, परंतु इतना तो स्पष्ट ही लग रहा है कि उसने अपने अस्त-व्यस्त चिकुर जाल को समेटना शुरू कर दिया है|"[48] प्राकृतिक चित्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए उपन्यासकार ने आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है|

प्रस्तुत उपन्यास से उपन्यासकार ने आतंरिक देवता की शक्ति का चित्रण किया है| मानव के लिए बाह्य एवं आंतरिक शुद्धि का होना आवश्यक है| मनुष्य में नैतिक गुणों के संचार के लिए आंतरिक शुद्धि की ज़रूरत है| नैतिक भावना से ही मानविकता तथा देश का उद्धार संभव होती है| इस तत्व द्वारा ही संस्कृति की महानता प्रकट होती है| राजा सातवाहन कहते है – "मैं चाहता हूँ मनुष्य के भीतर जो देवता स्तब्ध बैठा है, जो अन्याय के सामने नहीं झुकता, लोभ और मोह के प्रहारों से जर्जर नहीं होता शताब्दियों से विरूप परिस्थितियों में भी चारित्र्य को, दया को, परोपकार को कसकर पकड़ने में आनंदित होता है, उस देवता को उद्बुद्ध करना उसके शक्तिशाली होने पर दोष और बाधाएँ स्वयं परास्त हो जाएगी|"[49]

उत्सव प्रियता भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग है| उत्सवों से लोग खुशियाँ मनाती है और देश को पवित्र बनाता है| द्विवेदी के सारे-के-सारे उपन्यासों में विविध पर्वों तथा उत्सवों का वर्णन देखा जा सकता है| उपन्यास में उत्सव के एक

[48] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 309

[49] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ :365

संदर्भ इस प्रकार है – हाँ धर्मावतार! वीर तो और नट भी होते हैं, पर हम लोग केवल वीरता का ही काम नहीं करते, कलावंत भी है| मेरे पितामह जोधा सिंह इक्कीस नगाड़ों को पैरो के ताल से बजा लेते थे| उनकी क्षिप्रता और नृत्य कुशलता से मुग्ध होकर परम भट्टारक अनंगपाल ने उन्हें कारूनट की उपाधि दी थी| एक बार होली के अवसर पर गुलाल पर नृत्य करते हुए उन्होंने अपने पैरों से महाराजाधिराज की मनोंवाछिता प्रिय की मूर्ति बना दी थी|"[50] उपन्यास का मुख्य पात्र सातवाहन मंगोल भाषा सीखने के संदर्भ का चित्रण उपन्यासकार ने इस प्रकार किया है – "एक दिन मंगोल साधुओं में से एक ने कहा कि यहाँ से लगभग दस कोस की दूरी पर रेगिस्तान में मंगोल के पुरखे इल्मिशाखान की समाधि है| वहाँ आज बड़ा भारी उत्सव होनेवाला है|"[51] इसी प्रकार श्रावणी पूर्णिमा, महा शिवरात्रि आदि का भी चित्रण इसमें विद्यमान है|

भारतीय संस्कृति में प्रेमभावना को उत्कृष्ट स्थान दिया गया है| प्रेम का विभिन्न रूप 'चारुचन्द्रलेख' में प्राप्त है| उपन्यास का मुख्य पात्र सातवाहन, नारी को आदर सम्मान दृष्टि से देखनेवाला है| सातवाहन कहते है – "देवी, मैं नारी जाति का सम्मान करना जानता हूँ| उसकी महिमा और मर्यादा का जानकार हूँ| मुझे यह भी मालूम है कि मेरे कुल का कोई भी बालक बारी लम्पट नहीं होगा|"[52] उपन्यास के अन्य पात्र विद्याधर भट्ट रानी चंद्लेखा को पार्वती देवी के सामान मानते है| हमारी संस्कृति भी स्त्री को पुरुष से ज्यादा आदर देनेवाली है| नारी का मातृभाव महिमामयी एवं पूजनीय है| भारतीय संस्कृति के अनुसार माँ, ईश्वर तुल्य है| 'चारुचंद्रलेख' में चन्द्र लेखा की माता ने काशी में अपनी गोद में एक नन्ही बालिका

[50] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 242

[51] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 51

[52] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 20

(चंद्रलेखा) देखी तो उसका मातृहृदय फूट पड़ता है – "एक क्षण में मेरे सूखे स्तनों से दूध की धारा बहने लगी| नन्ही सी बच्ची काफी रो चुकी थी| उसके होंठ सूख चुके थे| मैं ने झट से उठाकर उसका मूँहअपने स्तन में दाल दिया| वह निश्चिन्त होकर पीती रही|"[53] माता का ईश्वरीय रूप यहाँ हमें देखने को मिलते हैं| भारतीय संस्कृति ही इस प्रकार के मातृप्रेम का आदर्श साकार कर सकती है|

सारे भारतीय देशप्रेमी है| सारे भारतवासी भाई – बहन है| 'भाईचारे' का नारा यहाँ गूँज रहा है| उपन्यास का पात्र मैनसिंह देशप्रेम की धारा का प्रत्यक्ष उदाहरण है| मैनसिंह विद्याधर भट्ट से कहता है – "हम मरणव्रत में दीक्षित है| हम अपने को प्रतिक्षण तिल-तिल करके आहुति देनेवाले गृहस्थ है, देश रक्षा का अर्थ है व्यक्ति का बलिदान|"[54]

राजा सातवाहन का देशप्रेम भी उल्लेखनीय है| वे कहते हैं – 'मनुष्य जाति के कल्याण के लिए मैं शास्त्र ग्रहण करूँगा|' उपन्यास की नायिका चंद्रलेखा भी एक संदर्भ में देश के लिए तलवार चलाने को तैयार हो जाती है| धर्म मानव का संस्कार है| यह मानवता का सन्देश देते है| धार्मिकता से ही मानव, पूर्ण रूप प्राप्त कर सकता है| प्रस्तुत उपन्यास में सर्वधर्म समभाव का सृजन द्विवेदी ने किया है| हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, शैव आदि धर्मी की समन्वयात्मकता इसमें विद्यमान है जो आर्ष भारत संस्कृति की प्रमुख विशेषता है| उपन्यास के सिद्धि पुरुष सीदी मौला हिन्दू मुसलमान को एक माननेवाले है, वे नमाज भी पढ़ लेते है और साथ ही-साथ मंदिर की पूजा भी करते है| राजा सातवाहन के धर्म संबंधी विचार इस प्रकार है – धर्म

[53] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 30

[54] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 30

मुक्तिदाता है| धार्मिक संघटन बंधन है| धर्म, प्रेरणा है, धार्मिक संघटन गतिरोध है| धर्म कोई संस्था नहीं है, वह मानवता की पुकार है|"[55] इसी प्रकार धर्म की व्याख्या करते हुए भगवती, सातवाहन से कहती है – 'सामजिक मंगल के लिए जो सहज प्रवृति है उसी का नाम धर्म है| उसके विरुद्ध जानेवाला अधर्म है|"[56]

मानवतावाद, भारतीय संस्कृति का प्रमुख तत्व है| द्विवेदी की सारी रचनाओं में यह तत्व पाई जाती है| 'चारुचन्द्रलेख' में विद्याधर भट राजा सातवाहन को जनता के अभावग्रस्त जीवन के बारे में समझाते हुए कहते है – "आर्य! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है| आपके चरणों की शपथ लेकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मनुष्य जाति के कल्याण के लिए शास्त्र ग्रहण करूँगा, किसी भी क्षुद्र स्वार्थ या सुख लिप्सा को इस पवित्र संकल्प में कलुष लेप करना अवसर नहीं दूंगा|"[57] इस मानवतावादी दृष्टिकोण में लोक कल्याण की भावना निहित है| मनुष्य को देवता बनाने का रूप मानवता से प्रकट होता है| रानी चंद्रलेखा का व्यक्तित्व मानवता से भरा हुआ जान पड़ता है| विद्याधर भट रानी चंद्रलेखा से कहता है - "भाव जगत के इन छिन्न सूत्रो को लेकर हमें आज भी इस देश की दीनता, परमुखापेक्षिता, दरिद्रता और असहाय जर्जरता से मुक्त करना है|"[58]

भारत कला, नृत्य और संगीत का देश है| कलाप्रियता का यशोगान भारतीय संस्कृति में प्राप्त होता है| उपन्यास में कला प्रियता, नृत्य, संगीत, अभिनय, मूर्तिकला आदि का चित्रण विद्यमान है| राजा जयित्रचंद्र स्वयं कला मर्मज्ञ थे| 'सुहव देवी' को कला निपुण होने के कारण उसे 'कला-भारती' कहते थे| उपन्यास में

[55] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 307
[56] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 289
[57] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 78
[58] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 78

करनाटी के नृत्य का उल्लेख है| राजा सातवाहन ने बड़ा सुहावना दृश्य देखा – "किसी खण्डहर से बड़ी हलकी ध्वनी में वीणा और उसके साथ संगीत की तान सुनाई पड़ी, जान पड़ता था कोई मंद मंद ध्वनी से वीणा बजा रहा है और साथ ही गाता जा रहा है|"[59] मल्लों के नृत्य गान का भी विवरण उपन्यास में हुआ है|

करुणा, मैत्री, विनय, विस्वबंधुत्व की भावना आदि भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है| प्रस्तुत उपन्यास में गुरु जब चंद्रलेखा से कहते है कि संसार में रोग, शोक, दरिद्रता, मोह और दुःख है, तब चंद्रलेखा धीमे स्वर में कहती है कि "क्या ऐसा रस बन सकता है, जो एक ही मात्र से करोड़ो मनुष्यों को रोग शोक से मुक्त कर दे| वह देर तक गुरु के करुणा कषायित नयनों की ओर देखती रही|"[60] नारी सम्मान तथा बड़ों का आदर इस उपन्यास के कई पात्रो का अपना गुण है| विद्याधर भट्ट सुहवदेवी के बारे में कहते है – "मैं ने उसमें स्त्री को सौभाग्य देनेवाले सभी लक्षणों को देखा और विनयपूर्वक कहा, देवी, यदि शास्त्र सत्य है तो तुम्हें सात दिन के भीतर राजराजेश्वरी बनना चाहिए|"[61]

उसी प्रकार उपन्यास के अंत में बोधा मैत्री का व्याख्यान इस प्रकार करता है – "समानशील, व्यसनेषु सख्यम, मैत्री शील और व्यसन की समानता चाहती है|"[62] विश्वबंधुत्व भारतीय सस्कृति का श्रेष्ठ तत्व है| महाराष्ट्र के श्रेष्ठ सन्त मनोश्वर ने कहा कि यह विश्व ही मेरा घर है| रानी चंद्रलेखा भी विश्वबंधुत्व को अपनाकर समस्त प्रजा के कल्याण के लिए सजग रहती है| उपन्यास में समस्त जगत के प्राणियों का जरा मृत्यु से उद्धार करने का संकल्प महान है| रानी चंद्रलेखा इस जगत के सारे

[59] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 54
[60] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 114
[61] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 43
[62] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 425

दुःख दर्दों को दूर करने के लिए सदा प्रयत्नशील दीख पड़ती है| समन्वय, मानव का सबसे श्रेष्ठ गुण है| एकता की भावना समन्वय का दूसरा रूप है| भारतीय संस्कृति, विभिन्नता में एकता के तत्व को लेकर आगे बढती है| सीदी मौला, उपन्यास के एक ऐसे पात्र है जो समन्वय की धारा पर खड़े हुए है| रानी का कथन है – "जात-पंत के कारण किसी को छोटा न समझो|" उपन्यास में गुरु गोरक्षनाथ का सन्देश है – आप संगठित होकर ही संगठित अत्याचार का विरोध कर सकते है|"[63] इस प्रकार द्विवेदी ने समन्वय का सांस्कृतिक आर्दश हमारे सामने प्रदर्शित किया है| अतिथियों का आदर करना हमारी संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है| महाराज अशोक चल्ल ने बोधा से कहा – "मुझे सबसे बड़ी लज्जा यह है कि महाराजाधिराज सातवाहन आज मेरे अतिथि है और मैं उनकी कुछ भी सेवा करने में असमर्थ हूँ|"[64] अतिथियों का सम्मान इस कथन से स्पष्ट होता है| सनातनता में दूसरों की सेवा भाव भी निहित है| उपन्यास में अलहना के प्रति राजा सातवाहन का प्रेम इस प्रकार व्यक्त किया है – जब दोनों ही थके हुए थे, तब राजा के लिए अलहना जंगली फूल फल और पानी लेकर प्रकट हुआ| राजा के विचार है – 'सेवा में ही मुक्ति है, सेवा का ही दूसरा नाम अहैतुक समर्पण है| सेवा का ही नाम प्रेम है, सेवा का ही नाम आनंद है|"[65]

भारतीय शकुन-अपशकुन पर विश्वास रखनेवाले हैं| प्रस्तुत उपन्यास में श्यामा पक्षी का चिरिलू-चिरिलू शब्द का गुंजन एवं कुक्कुट के तार स्वर का गुंजन शुभ शकुन के रूप में उद्धृत हुआ है|

इस प्रकार देखें तो सांस्कृतिक दृष्टि से यह उपन्यास सफल सिद्ध हुआ है|

---

[63] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 127

[64] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 127

[65] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 260

पुनर्नवा

'पुनर्नवा' में आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृति को प्रधानता दी है| कला, साहित्य, उत्सव आदि सांस्कृतिक आयोजनों का चित्रण इसमें देखा जा सकता है| भारतीय मान्यता के अनुसार जीवन का हर पक्ष संस्कृति के अंतर्गत समाहित किया गया है|

संस्कार

राज भवन में कला को सम्मान मिलता है| देवरात के कला-प्रेम, वहाँ की जनता को उसकी ओर आकृष्ट करने लायक है| मंजुला की कला पटुता भी जन-मन को मोहित करने लायक है| वह नगर में अभिमानी गणिका के रूप में विख्यात थी| विशेष अवसर पर राजदरबार में उसकी नाच होती थी| नगर में वसंतोत्सव धूमधाम से मनाया था| उपन्यासकार के शब्दों में – "वसंतारंभ के दिन इस सस्वती विहार में काव्य, नृत्य, संगीत आदि का बहुत बड़ा आयोजन हुआ करता था| उस दिन राजा स्वयं इन उत्सवों का नेतृत्व करते थे| कई दिन तक नृत्य गीत के साथ साथ अक्षर च्युतक, बिन्दुमती की प्रतियोगिताएँ चलती थी| न्याय और व्याकरण के शास्त्रार्थ बुआ करते थे| कवियों की समस्या पूर्ति की प्रतियोगिता भी चला करती थी| देश विदेश से आये मल्लों की कुश्तियाँ भी थी|"[66]

पूजा पाठ, व्रत, उपवास आदि भी हमारी संस्कृति के अंग है| पुनर्नवा के प्रमुख नारी पात्र मंजुला, अधिक समय पूजा पाठ में मग्न थी|

उज्जयिनी के राज दरबार में भी काव्य एवं कला को सम्मान प्राप्त था| राज दरबार में सम्मान पाने के लिए कवि गण राजा की स्तुति किया करते थे| इसलिए

[66] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 9

माधव्य चंद्रमौली से कहते है – "पहला काम करना होगा उज्जयिनी में चलकर राजा की स्तुति करना, बढ़िया श्लोक बनाकर| बाकी मैं देख लूँगा|"[67] कार्तिक पूर्णिमा के दिन गोवर्धन पूजन के अनुष्ठान का चित्रण मिलता है – "कार्तिक पूर्णिमा को ग्राम तरुणियों ने गोवर्धन धारण की लीला करने का निश्चय किया| वह लीला मनोहर थी| गोवर्धनधारी कृष्ण एक हाथ में वंशी लिए हुए, दूसरे हाथ की उँगली ऊपर किए खड़े थे| तरुणियाँ उनको चारों ओर उल्लसित होकर नाच रही थी|"[68]

वसंतसेना का नृत्य भी लोगों के आकर्षण का केन्द्र है| भगवान श्रीकृष्ण ने कालिया नाग के सहस्र फनों पर विकट नृत्य किया था| उसका वैशिष्ट्य था कि नाचनेवाला बालक अनजान था कि वह मृत्यु के मुहँ में है| वसंतसेना ने भगवान कृष्ण बनकर उस विकट मनोहर नृत्य को उजागर किया था| इसी तरह प्रस्तुत उपन्यास में राजभवन के भीतर भी एक उत्सव की चर्चा हुई है| जब आचार्य पुरगोभिल गंभीर शास्त्र चर्चा कर रहे थे, आज भवन के भीतर स्त्रियों के नाच गान होने का वर्णन इसमें है|

बटेश्वर महादेव के दर्शन व पूजन के लिए मृणाल बटेश्वर तीर्थ जाती है| बटेश्वर तीर्थ की महिमा दूर-दूर तक फैली हुई थी| लोग अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए वहाँ आते थे| वह मंदिर सांस्कृतिक विरासत है| अन्न की उपासना हमारी संस्कृति की अपनी विशेषता है| देवरात ने आर्यक को भोजन से पूर्व अन्नपूर्णा के ध्यान का मन्त्र सिखाया था, जब चारुदत्त की पत्नी ने भोजन परोसा तो एकाएक उसने ध्यान-मन्त्र का स्मरण किया| कार्य प्राप्ति के लिए उचित देवी देवताओं की स्तुति का विधान हमारी संस्कृति की प्रमुख विशेषता है जो प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों

[67] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 65-66

[68] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 68

में देखा जा सकता है| मूर्तिकला संबंधी उल्लेख भी इसमें मिलता है| बुद्धों, पंचमुखी, शिव तथा यज्ञ मूर्तियों का सुन्दर वर्णन भारतीय मूर्तिकला के सौन्दर्य को व्यक्त करते है|

नारी का जीवन पुरुष की अपेक्षा भिन्न है| भारतीय संस्कृति के अनुसार स्त्री, सर्व दुखों को सहनेवाली तथा पुरुष के पीछे चलनेवाली है| 'पुनर्नवा' में मृणाल मंजरी अपने पिता से व्यायामशाला में जाने की अनुमति पूछती है, तब देवरात हँसकर कहता है – "लड़ना और व्यायाम करना पुरुषों का काम है| तुझे मैं इसके बदले चित्रकला सिखाऊँगा|"[69]

सामाजिकता के रूप में पुरुष के साथ नारी का संबंध प्रेमिका, विवाहिता, कुलवधू एवं गणिका इन तीनों रूपों में चित्रित हुए है| इसके अतिरिक्त विशेष रूप से पिता पुत्री(देवरात मृणाल), देवर-भाभी(-धूता), गुरु-शिष्य(डेरात-श्याम रूप आर्यक), मित्र(चन्द्रलौली-माधव्य) आदि के संबंध स्वाभाविक रूप से भारतीय संस्कृति के आदर्श प्रतीक है|

नारी का सौन्दर्य वर्णन भी जगह-जगह प्राप्त होता है| मंजुला, रूप, शील, गुण, कला-पटुता आदि से इतनी परिपूर्ण है कि उसे लोग 'देवी; ही मानते हैं| मृणाल, धूता, चडसेन की पत्नी आदि के व्यवहार से उच्च वर्ग की नारी का स्वरूप उभरा है| उपन्यासकार ने पुनर्नवा में नारी को अत्यंत सम्माननीय दृष्टि से देखते हुए उसे मानवीय धरातल से ऊँचा उठा दिया है| जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते है| सतीत्व शील, विनय, पवित्रता और सरलता स्त्रियों की अपनी संपत्ति है|

---

[69] चारुचन्द्रलेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 25

'पुनर्नवा' में विवाह संस्था का, एक पवित्र संस्था के रूप में उद्धृत किया गया है| लोकापवाद से आर्यक को चन्द्र से बचकर भागना पड़ता है| देवरात की पत्नी शर्मिष्ठा को सती हो जाना तथा चंद्रा का बलात विवाह आदि विवाहसंस्था के विकृत रूप भी उपन्यास में विद्यमान है| पुरगोभिल, पुरंतर को सचेत करते हुए कहता है कि "हमें व्यवस्थाओं में परिमार्जन भी करना चाहिए| नहीं तो व्यवस्थाओं के साथ साथ धर्म भी टूटेगा|"[70]

यक्ष जैसे देवों की पूजा करने की प्रथा भी प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है| नगर के सेठ लोग व्यापार के लक्ष्य में जब बाहर जाते हैं और धन कमाकर वापस आते है तब मणि भद्र यक्ष की पूजा बड़ी धूमधाम से करते है| शिव की उपासना भी ये लोग किया करते थे| उपन्यास का पात्र चन्द्र मौली, माधवी शर्मा को उज्जयिनी की महत्ता बतलाते हुए स्पस्ट करता है कि ईश्वर कण-कण में व्याप्त है| "उज्जयिनी अर्थात् ऊपर की ओर जीतने की अभिलाषा रखनेवाली| मैं अनुभव करता हूँ कि इस विराट विश्व में शिव और शक्ति की जो अनादि लीला चल रही है, वह उससे अलग नहीं होनी चाहिए|"[71]

भारतीय संस्कृति का सबसे श्रेष्ठ स्वर मानव प्रेम है| यहाँ सदैव मनुष्यता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है| पुनर्नवा में मानव प्रेम का स्वर अधिक गूँज उठा है| आचार्य देवरात दीन-दुखियों की सेवा करने में सदा तत्पर रहते थे| उनका चित्रण दिवेदी ने मानव के रूप में नहीं, देवता के रूप में किया है| नगर में महामारी का प्रकोप जब हुआ तब देवरात पीड़ित लोगो की सेवा शुश्रुषा में लगे रहे| गोपाल आर्यक चंद्रा को दुष्टों के हाथ से छुड़ाता है और उन पर सिंह की भांति दहाड़कर 'मैं आर्यक आ गया हूँ, दुष्टों को अपने किए का फल भोगना पड़ेगा' यह कहना मानवता

[70] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 162

[71] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 101

का लक्षण है| करुणा, मैत्री, प्रेम भावना, विश्वबंधुत्व आदि भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है जो प्रस्तुत उपन्यास में सर्वत्र विद्यमान है|

लोकजीवन, संस्कृति का प्रमुख तत्व है| 'पुनर्नवा' में इसका चित्रण बड़ी मनोरसता के साथ हुआ है| लोगों के खान पान, वेशभूषा, शिष्टाचार, पर्व, उत्सव आदि में लोक जीवन का चित्र अंकित हुआ है| इस प्रकार देखें तो द्विवेदी की पुनर्नवा में भारतीय सांस्कृतिक परिवेश स्पष्ट रूप में दिखाई देता है|

वर्ण

समाज में जाति व्यवस्था का जो प्रचालन था, वह भी प्रस्तुत उपन्यास में विद्यमान है| निम्न जाति से उच्च जाति के लोग विवाह नहीं करते थे| गणिका जाति में जन्म लेने के कारण उपन्यास की नायिका मृणाल मंजरी से विवाह करने के लिए आर्यक तैयार नहीं होता है|

'पुनर्नवा' में वर्णाश्रम को उजागर करने का चित्रण दिखाई देता है| ब्राह्मणों के ऊँचे स्थान एवं सम्मान की बात बार बार आई है| उज्जयिनी में देवरात एवं श्रुतिधर तथा देवरात चन्द्रमौली की बातचीत से यह तत्व स्पष्ट हो उठा है| समाज में वर्णाश्रम का स्वरूप च्यवन भूमि के चौधरी वृद्धगोप आचार्य देवरात पर अपने दो पुत्रो का भार सौपते हुए कहते हैं – "मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि श्यामरूप अपनी वंश परंपरा के अनुसार पंडित बने और आर्यक वंश परंपरा के अनुसार अजेय मल्ल बने परंतु आपके चरणों में इन्हें सौंपकर मैं निश्चिंत हुआ हूँ| आप इन्हें यथोचित शिक्षा दें|"[72] श्यामरूप ब्राह्मण कुमार है, आर्यक क्षत्रिय कुमार|

[72] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 167

वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था| उनका कार्य अध्ययन-अध्यापन का था| तत्वज्ञानी ऋषि, सामाजिक जीवन से दूर तत्व चिंतन किया करते थे| समाज में तत्व चिन्तक ऋषि सम्माननीय माने जाते थे| ब्राह्मण कुमार श्यामरूप, मथुरा के वृद्ध ब्राह्मण, आचार्य श्रुतिधर, माधवी शर्मा, चारुदत्त एवं उनके मित्र पुरुगोभिल के संभाषण प्रसंगों में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा, पतन तथा पुनरुत्थान के स्पष्ट चित्र प्राप्त होते है| राज काज में क्षत्रिय प्रतिष्ठित थे| धन-संचय और दान पुण्य वैश्यों का काम था| शूद्रों का उपन्यास में उल्लेख नहीं मिलता है|

हमारी संस्कृति पावन माना जाता है| फिर भी समाज में कुछ अनीतियों का प्रचलन पुराने समय से लेकर चलता आ रहा है| उनमे एक है छुआछूत| यह व्यवस्था गुप्तकालीन समाज में भी देखा जा सकता है| पुनर्नवा का उपन्यासकार महाकाल के मंदिर में भिल्लों का प्रवेश निषिध होकर बताया गया है|

दर्शन

आध्यात्मिक तत्व का चित्रण इस उपन्यास में अनायास ही प्राप्त होता है| उपन्यास में इच्छा शक्ति एवं क्रियाशक्ति को आधार लिया गया है| पुरुष एवं नारी को माध्यम बनाकर उपासना साधना की व्याख्या स्पष्ट करके द्विवेदी ने पुनर्नवा में आत्मा एवं परमात्मा का भाव प्रकट किया है| आचार्य देवरात का, मृणाल के साथ संवाद है – "देख बेटी भगवती महामाया नारी के रूप में केवल प्रेरणा शक्ति है, पुरुष के रूप में प्रेरणावाहिनी|"[73] नारी परमात्मा का रूप है और पुरुष आत्मा बनकर उसे प्रेरणादायी बनाता है|

पुनर्जन्म, जन्म जन्मान्तर, कर्मफलवाद, को भी प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी ने चित्रित किया है जो भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ है| चंद्रमौली पूर्व जन्म

[73] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 40

के पापों का फल भोग रहा था| देवरात के जीवन में बौद्ध सन्यास वाद , ब्राह्मण गृहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रम और भगवत भक्ति की त्रिवेणी दिखाई पड़ती है| द्विवेदी की दृष्टि में पीड़ित व्यक्ति, जो रोग शोक दुःख दैन्य से पीड़ित है उसका उद्धार करना ही धर्म है| पुनर्जन्म, धर्म का एक पहलू है| प्रस्तुत उपन्यास में चन्द्रमौली देवरात से पूछता है – "यह क्या सत्य है पुराण ऋषियों ने बताया है कि मनुष्य अपने पूर्व जन्मों के पापों का ही फल भोग रहा है|"[74]

अनामदास का पोथा

दर्शन

द्विवेदी साहित्य की चरम सीमा मनुष्य को मानते हैं| उनका ब्रह्म उनकी आत्मा, उनका वैशानर, तप, साधना, तथा परम सत्य मानव पर ही केंद्रित है| दूसरे के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की भांति निचोड़कर दे देना वे सबसे बड़ी तपस्या मानते हैं| आत्मा परमात्मा का चिंतन अध्यात्म कहलाता है| लेखक ने इस चिंतन को ही जनसेवा माना है|

ऋषि औषस्ति की पत्नी माता ऋतंभरा रैक्व से कहती है – "यह शरीर नाशवान है, प्राण विनश्वर साधन मात्र है, मन भी नष्ट हो जानेवाला साधन है, अनश्वर है केवल आत्मा| पिण्ड में जो आत्मा है वही ब्रह्माण्डव्यापी ब्रह्म है|"[75] उपन्यास में पूर्व जन्म, मनुष्य का चैतन्य जगत, ज्योतिषशास्त्र, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आत्मा, ब्रह्माण्ड, वायु के रूप में मनुष्य सत्य जहाँ विश्लेषित है, वहाँ पुरुषार्थ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, आत्मा की भी चर्चा की गई है|

[74] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 50

[75] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 60

उपन्यास में आश्वलायन रैक्व को 'मधु विद्या का सार' कहते हुए आत्मा की परिभाषा बताते है – "आत्मा ही अमृत है, आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही सबकुछ है| मानुष भाव में तेजोमय अमृतमय पुरुष है| वह समष्टि रूप में ब्रह्माण्ड की आत्मा है, भिन्न भिन्न व्यक्तियों में जो तेजोमय पुरुष है, वह व्यष्टि पिण्ड की आत्मा है|"[76] प्रस्तुत उपन्यास में ब्रह्म के दो रूप बताये गए है, मूर्त और अमूर्त| अमूर्त तो वायु और अन्तरिक्ष है तथा मूर्त यह सारा प्रपंच है जो हमारी आँखों के सामने दृश्यवान है|

आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता के बारे में भी इसमें बताया गया है| प्रजापति कहते है – "पिण्ड में, शरीर में, जो आत्मा है, वही ब्रह्माण्ड में ब्रह्म है| वह विद्यमान अखंड, चैतन्य स्वरूप, अनाविल, आनंद रूप सच्चीदानंद| ब्रह्म और आत्मा अभिन्न तत्व है|[77] आध्यात्मिकता को और भी उत्कृष्टता के शिखर पर पहुँचाते हुए द्विवेदी कहते है – "दुखियों का दुःख दूर करना ही सच्ची आध्यात्मिक साधना है, यही तप है, यही मोक्ष है|"[78]

आंतरिक शुद्धि को द्विवेदी हमेशा प्रधानता देनेवाले थे| उपन्यास में जटिल मुनि से माताजी बता रही है – "तेरा गुरु तो तेरे भीतर बैठा है| तेरे भीतर तो अनंत संभावनाएँ भरी पड़ी है| तू बाहर क्यों देखता है? तेरा देवता तेरे भीतर ही है|"[79]

इतिहास

'अनामदास का पोथा' पूर्ण रूप से एक आध्यात्मिक उपन्यास है| इसकी कथा छान्दोग्य उपनिषद से ली गई है| इसलिए प्रस्तुत उपन्यास में आध्यात्मिकता नामक

[76] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 147
[77] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 58
[78] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 69
[79] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 184

सांस्कृतिक तत्व अपने आप ही समाविष्ट है| उन दिनों देश का अधिकांश भाग जंगलों से घिरा हुआ था| इन जंगलो में जहाँ अनेक हिंसक जंतु फैले हुए थे, कुछ तपस्वी भी कुतिया बनाकर रहा करते थे| कुछ तपस्वी पूरा अपना समय तपश्चर्या में लगा रहते थे, लेकिन कुछ अध्ययन कार्य करते थे| उनके यहाँ जिज्ञासु विद्यार्थियों की उपस्थिति बराबर बनी रहती थी| वे ऋषि कहलाते थे और गृहस्थ जीवन बिता करते थे| ये ब्रह्म या वेद को चरम या परम मानने वाले थे|[80] जो ब्राह्मण नहीं होते थे, वेद और ब्रह्म को नहीं मानते थे, वे मुनि कहलाते थे| ऋषियों के, अपने बाल बच्चों के अतिरिक्त गायें भी हुआ करती थी| यज्ञादि के अतिरिक्त चिंतन इनका दैनिक कार्य था| ऋषियों के आश्रम सरिता या जलाशय के रमणीय तट पर हुआ करते थे जहाँ वे शिष्यों को वेद विद्या, नीति शास्त्र, ललित कलाएँ तथा धुनुर्विद्या की शिक्षा दिया करते थे| इन आश्रमों में विद्यार्थी को स्वस्थ रखने केलिए उससे शारीरिक श्रम भी कराया जाता था| ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अर्थववेद अध्ययन के आधारभूत ग्रंथ माने जाते थे| वेदों का वेद समझानेवाला इतिहास पुराण वैदिकज्ञान की कुंजी माना जाता था| जो इतिहास पुराण नहीं जानता था, उसे अल्पश्रुति माना जाता था और ऐसा विश्वास किया जाता था कि ऐसे अल्प श्रुत व्यक्ति से वेद डरते है कि यह हमारे ऊपर ही प्रहार कर बैठेगा|[81] वेद और इतिहास भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है|

संस्कार

भारतीय संस्कृति में अतिथियों का स्वागत बहुत आदर के साथ किया जाता था| वृद्धों का सम्मान करना, नारियों का आदर करना आदि हमरी संस्कृति की

[80] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 24

[81] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 131

विशेषता है| प्रस्तुत उपन्यास में भी विद्वानों को भगवान कहकर संबोधित किया गया है| नारी को भवती कहकर संबोधित किया है|

गुरु-शिष्य संबंध की विशिष्टता हमारी संस्कृति की उल्लेखनीय विशेषता है| 'अनामदास का पोथा' इस संस्कृति को बनाये रखने का प्रयास सिद्ध होता है| गुरुपूर्णिमा के दिन शिष्य, गुरु की पूजा करके उनका सम्मान किया करते थे| इसी दिन शिष्य, गुरु को उपहार भी देकर प्रसन्न करते थे|

द्विवेदीजी, संस्कृति और प्रकृति के पूजारी है| प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदीजी, प्रकृति की परिभाषा देते हुए सांस्कृतिक एकता को साकार करते हैं| द्विवेदी का प्रकृति प्रेम, भारतीय संस्कृति की उपलब्धि है| मामा के बारे में रैक्व एवं माता का कथन है – "देख रे, सृष्टि चलती रहेगी| जो लोग अलग बैठकर इसे बंद कर देने का सपना देखता है, वे भोले हैं| जिजीविषा है तो जीवन रहेंगा, जीवन रहेंगा तो अनंत संभावनाएँ भी रहेगी| सब चलता रहेंगा, यही प्रकृति है| इसे सुनियंत्रित रूप से चलाने का प्रयास शुभ है, वही संस्कृति है| प्रकृति को सुनियंत्रित रूप में चलाने का नाम संस्कृति है|[82]

उत्सवप्रियता का चित्रण भी द्विवेदी ने अपने उपन्यास में किया है| उपनयन संस्कार, गुरु-पूर्णिमा, आषाढी श्रावणी पूर्णिमा का उल्लेख इसमें मिलता है|

यह हमारी संस्कृति की नियति है कि युवक युवती स्वतंत्र रूप से वार्तालाप नहीं कर सकते है| प्रस्तुत उपन्यास की नायिका जाबाला, अपने पिता के द्वारा उसकी तलाश भेजे गए आदमियों की पद-चाप सुनकर पुरस्कार देने के स्थान पर सहायक रैक्व को कहीं दूर छिप जाने के लिए बाध्य करती है|[83] समाज में कई तरह

[82] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 88

[83] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 51

की रूढ़ियाँ तथा अन्धविश्वास प्रचलित थे| युवतियों की मनोवांछा को जानने के लिए गंधर्व पूजन किया जाता था| गंधर्व पूजन के लिए नाट्य आयोजन होता था|

'अनामदास का पोथा' नामक उपन्यास में प्रेम का उत्कृष्ट भाव देखा जा सकता है जो हमारी संस्कृति की प्रमुख विशेषता है| उपन्यास में जटिल मुनि, रैक्व से शुभा के बारे में कहते है – 'शुभा से तुम्हें प्रेम है? अपने को निछावर कर देने की भावना प्रेम कही जाती है|"[84] उपन्यास का मूल तत्व प्रेम ही है| द्विवेदी का विचार है कि प्रेम के माध्यम से हम सत्य का साक्षात्कार कर सकते हैं| जीवन में निहित विराटता का साक्षात्कार प्रेम के द्वारा ही संभव है| रैक्व का जाबाला के प्रति प्रेम, ऋतंभरा का रैक्व के प्रति प्रेम, औषस्ति का रैक्व के प्रति प्रेम, मामा का बच्चों के प्रति प्रेम सब आदर्श प्रेम भावना का उदहारण है|

भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा आदर्श मानवता द्वारा स्पष्ट होता है| अनामदास का पोथा इस आदर्श से परिपूर्ण है| उपन्यास का पात्र ऋतभरा, रैक्व से कहती है – 'शुभा, तेरे साथ बुद्धि की परीक्षा करेगी तो उससे क्या कहना चाहिए|' रैक्व का कथन है – 'मेरे पास अगर वह बुद्धि की परीक्षा लेने आयेगी तो उसे गाडी खींचकर दीन-दुखियों तक खाद्य पहूँचाने को कहूँगा| इसी में उसकी बुद्धि की परीक्षा हो जाएगी| जो दीन-दुखियों की सेवा नहीं कर सकता, वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा|"[85] समस्त मानव समाज को पीड़ित और भूख प्यास से व्याकुल देखकर रैक्व की साधना की समाधि पूर्ण नहीं हो पाती है| उनकी आँखों में सर्वत्र भूखे नंगे बच्चे और कातर दृष्टिवाली माताएँ ही दिखाई पड़ती है| प्रस्तुत उपन्यास के सभी पात्र

[84] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ :174

[85] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 59

ऋतूभरा, माता, रैक्व औषस्ति, जाबाला आदि दीन-दुखियो की सेवा का व्रत लिए हुए मानवता के पूजारी ही प्रतीत होते है|

भारत विविध कलाओं का देश है| द्विवेदी ने प्रस्तुत उपन्यास में नृत्य गान नाटक अभिनय आदि का चित्रण किया है| राज जानश्रुति के दरबार में जो नाटक का आयोजन हुआ था उसका वर्णन इस प्रकार है – "सायंकाल, आडंबर के साथ गंधर्व पूजन नाटक का अभिनय शुरू हुआ| पहले रंगपूजा हुई| नगाड़ा बजाकर रंग पूजा की घोषणा हुई| फिर गायक और वादकों ने आसन्न ग्रहण किया| मृदंग,वीणा और वेणु आदि वाद्यों के साथ रंग भूमि में अप्सरा वेश धारी एक कमनीय कांति भंकुश के नृत्य लोल नूपुरों की झंकार से नाटक की उत्थापना का अभिनय किया गया|"[86] चित्रकला का भी उल्लेख इसमें हुआ है|

संस्कृति को श्रेष्ठ बनानेवाले अहिंसा, करुणा, मैत्री, विनय, विश्वबंधुत्व, समन्वयशीलता, सनातनता आदि तत्वों का उल्लेख भी 'अनामदास का पोथा' में हुआ है| रैक्व ऋषि अपनी यात्रा में जब मरे हुए गाड़ीवान को देखता है तब उसके मन में करुणा का उदय होता है| जटिल मुनि की व्याकुलता की पहचान करके माता की आँखे भी करुणा से आर्द्र हो उठता है| आश्वलायन और रैक्व का मैत्री भाव इन वाक्यों से स्पष्ट है कि शुभा के बारे में कहते समय आश्वलायन कहता है – माताजी कुछ नहीं कहेगी मित्र, तुम इतना समझ लो की आश्वलायन तुम्हारा सच्चा मित्र है|

[86] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 59

ऋतभरा रैक्व को औषस्ति के पास जाने के बारे में विनयशीलता का व्यवहार इस प्रकार बताती है – "उनके पास विनम्र होकर जाना, भूमि पर सिर रखकर प्रणाम करना और जब तक वे बैठने न कहें तब तक हाथ जोड़कर खड़े रहना|"[87]

उपन्यास में मानवता के माध्यम से विश्वबंधुत्व रूपी सांस्कृतिक तत्व उभरकर आया है| दीन दुखियों का दुःख दूर करने का संकल्प रैक्व, माँ ऋतभरा के साथ लेना चाहता है, तब माँ कहती है – "संपूर्ण विश्व का रूप ही नर रूप में अराध्य है| खण्ड दृष्टि से न हो, पूर्ण दृष्टि से देखना ही वैश्वानर की उपासना है|"[88] भारतीय संस्कृति के उदार दृष्टिकोण जैसे संस्कारों से ही ऋतभरा माता, रैक्व को विश्वव्यापी धारणा समझती हैं| समस्त प्रजा के सुख का उपलक्ष्य स्पष्ट करके उसके उपायों का अनुलक्षण बताती है|

उपन्यास में सत्य के द्वारा समन्वय का उद्घाटन हुआ है| प्रस्तुत निबंध में माता ऋतूभरा के माध्यम से द्विवेदी अपना विचार प्रकट करते हैं कि तपस्या की कसौटी तो समाज अवश्य है, पर सत्य के लिए सत्यवादी बनना चाहिए| उसी प्रकार प्रजा शब्द का अर्थ ही संतान है| राजा के लिए प्रजा की सारी बेटियाँ उसकी अपनी बेटी है| सबका समान ध्यान रखना चाहिए| इस विचार से सत्य और समन्वयात्मकता का स्पष्ट छाप हमें मिलते है|

घर आए हुए अतिथियों का सम्मान एवं सत्कार करना संस्कृति का प्रतिक है| उपन्यास में रैक्व, माता और दीदी केलिए पानी और फल जुटाने में प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था|

---

[87] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 117

[88] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 53

अनामदास का पोथा में लोकजीवन रूपी सांस्कृतिक तत्व का परिचय मामा के माध्यम से मिलते है| ऋतू भरा से मामा कहते है – "मैं गाँव बहर का मामा होकर यहाँ समा गया हूँ| विधाता ने अपना कोई नहीं छोड़ा तो सारा गाँव ही अपना हो गया| अब बच्चों का भी मामा हूँ, बहुओं का मामा हूँ, साँसों का भी|"[89]

उपन्यास में शकुन तिथि, नक्षत्र आदि का भी उल्लेख हुआ है जो हमारी संस्कृति की एक विशेषता है|

वर्ण

'अनामदास का पोथा' नामक उपन्यास में तत्कालीन वर्ण व्यवस्था का चित्रण हमें प्राप्त होता है| रैक्व के आश्रम में सामगान की चर्चा हुआ करते थे| "उनमें दो तो ब्राह्मण थे और तीसरे क्षत्रिय थे| ब्राह्मण, ऋषियों में प्रथम थे, शालवन के पुत्र शिलक और दूसरे थे चिकितायन के पुत्र दाल्भ्य| क्षत्रिय ऋषि जीवल के पुत्र प्रवाहण थे| तीनों उद्गीथ विद्या के मर्मज्ञ थे|"[90]

धर्म

धर्म की प्रधानता उपन्यास में सर्वत्र देखा जा सकता है| ऋषि औषस्ति रैक्व से कहते है – "साधू वत्स, सज्जनों का संग, सद् ग्रंथो का अध्ययन, सत्य पर दृढ़ आस्था, और दुखी जनों की सेवा ही परमधर्म है|"[91] उसी प्रकार ऋषिकुमार, जाबाला से कहते हैं – 'शुभे मैं ने वृद्ध लोगों से सुना है कि आर्त और दुखी लोगो की सेवा करना धर्म है|"

[89] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 75
[90] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 25
[91] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 60

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में मिथक

बाणभट्ट की आत्मकथा

सादृश्य

बाणभट्ट की आत्मकथा में आधुनिक युग की अनेक समस्याओं का चित्रण देखा जा सकता है| प्रस्तुत रचना के द्वारा उपन्यासकार का उद्देश्य भी यही था कि मध्य युगीन भारतीय परिवेश की मान्यताओं को प्रस्तुत कर सामयिक परिवेश से संबंध स्थापित करना| जनता में व्याप्त जाति-पाँति, अंध विश्वास, भेद-भाव और मिथ्या धारणाओं का यथार्थ उद्घाटन किया गया है| नारी को देवी और उसके शरीर को देव मंदिर की पवित्रता दी जाती थी| लेकिन सातवीं शताब्दी तक आते-आते उपयुक्त मान्यताएँ विलुप्त होने लगी| पूज्या नारी काल परिवर्तन के साथ भोग्या बन गई|

ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के साथ मिथकों का प्रयोग द्विवेदी ने कुशलता के साथ किया है| हर्षकालीन भारत की विदेशी आक्रमणकालीन समस्या आधुनिक भारत की राजनैतिक समस्या के साथ पूर्ण संबंध रखती है| आज की तरह हर्षकाल में भी हत्यारे, लुटेरे डाकुओं आदि समाज में देखा जा सकता था|

इसी प्रकार नाट्यशाला के सुन्दरी नर्तकियों का जो रोमांस है वह आज भी सिनेमा आदि में पाया जाता है| उसकी झाँकी इस उपन्यास में मालविकाग्नीमित्र और अभिनायकर्ताओं के द्वारा स्पष्ट की गई है| निपुणिका, उस काल की परम सुन्दरी अभिनेत्री थी| राजकुल उस पर आसक्त था, फिर भी वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल निकली|

प्रस्तुत उपन्यास में भट्टिनी, निपुणिका, सुचरिता, महामाया आदि सभी विचित्र विडंबनाओं की शिकार है और उनके दारुण जीवन भिन्न-भिन्न नारी समस्याओं को प्रकाशित करते है| मध्यकालीन भारत की एक प्रमुख समस्या नारी अपहरण है

जिसकी अभिव्यक्ति भट्टिनी द्वारा की गई है| भट्टिनी के चरित्र चित्रण में द्विवेदी ने युगीन चेतना का सहारा लिया है| उपन्यासकार ने भट्टिनी के चरित्र के द्वारा नारी जीवन की उत्साह, नैतिक मूल्य, स्वतंत्रता, वीरता,प्रतिक्रिया करने की शक्ति, नारी सम्मान और गोरव की रक्षा करने का सन्देश आदि भावनाएँ भर दी| भट्टिनी निरंतर अपने उद्धार की आशा में महावराह की प्रतीक्षा करती रहती है| डॉ बच्चनसिंह महावराह को स्पंद चेतना का प्रतीक मानते हैं| संपूर्ण धरा जलप्लावन में डूब जाना जनजीवन के गतिशुन्य जडत्व को प्रतीकायित करता है| महावराह उस जड़ता को तोड़नेवाली सक्षम आस्था का प्रतीक है| वह आस्था युगानुसार बदलती रहती है|

निपुणिका, अपमानित एवं कलंकित नारी है| समाज की कुत्सित रुचि पर तिलमिला करके उसने अपने को होम कर दिया| द्विवेदी ने ऐसी नारियों को समाज में प्रतिष्ठित स्थान दिलाने का प्रयास किया है| निपुणिका, महावारह की उपासिका थी क्योंकि वह भागवत धर्म से प्रभावित थी| उसका विश्वास है कि समाज में पीड़ित नारी की रक्षा भगवान महावराह कर सकता है| निपुणिका जैसी काल्पनिक पात्र से युगीन परिवेश का सफल अंकन उपन्यासकार ने किया है| लेखक, भौतिक शरीर से ऊपर उठकर आदर्श के आधार पर नारी तत्व का विवेचन करते है| निपुणिका अस्पृश्य कुल में उत्पन्न हुई| शबरी के समान अपने कर्तव्य निष्ठा तथा चारित्रिक शक्ति के द्वारा समाज में प्रतिष्ठा पाई| निपुणिका के चरित्र के माध्यम से लेखक यह साबित करना चाहते है कि मात्र नीच कुल में जन्म लेने से एक स्त्री अस्पृश्य नहीं होती|

सुचरिता, सामान्य बाल-विवाहिता, पति परित्यक्ता एवं भावनाशील नारी के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है| उसके चरित्र का आधार करुणा है| वह मानव समाज को यह सन्देश देती है कि मानव, विधाता की सर्वोतम कृति है| इसलिए सत्य करने का परिश्रम करो|

प्रस्तुत उपन्यास का और एक नारी पात्र है महामाया भैरवी| वह एक कुशल राष्ट्र संचालक के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है| महामाया में नारी जाति की गरिमा को सुरक्षित रखने और उसे बढाने की अभूतपूर्व शक्ति थी| महामाया का चरित्र सोद्देश्य पूर्ण उपन्यासकार ने किया है| इसके द्वारा उनका लक्ष्य यह तथ्य लोगों को समझाना है कि देश की अखण्डता एवं एकता की रक्षा कर, शांति स्थापित करने की चिंता शासकों की अपेक्षा प्रजा को होनी चाहिए|

ऐतिहासिक घटनाएँ

लोरिक देव हर्ष कालीन वीर योद्धा, देशभक्त, स्वाभिमानी, कुलीन, स्वामी भक्त सामंत थे| उसका विश्वास है कि अयोग्य राजा की मैत्री से हमारा बल भी नष्ट हो जाएगा| लोरिकदेव की गाथा अनेक कालों से गाँवों में गाई जा रही है| गुप्त वंश की सेना का यह वीर सेनानी देश पर होनेवाली विपति का सामना करने के लिए हमेशा तैयार रहता है|

मध्यकालीन सामन्तीय युग यथार्थ में कलंकित था| मानवता का अभाव पूर्ण रूप से समाज में देखा जा सकता था| कहीं अव्यवस्था तथा अत्याचार ही देखा जा सकता था| भट्टिनी, निपुणिका, सुचरिता सभी इसके भागीदार हुए| बाण भट्ट स्वयं इस अवस्था में डूबा हुआ था| धार्मिक क्षेत्र पाखण्डता से भरा था| ऐसे अवसर पर महावराह रूपी शक्तिशाली और आस्थावान व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इन सारे चराचरों का उद्धार करके सच्चा मार्ग दिखा दे और जीवन में प्रकाश फैला दे| नारी का उद्धार के लिए महावराह का रूप बाण ने धारण किया और सांस्कृतिक, धार्मिक, वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक सभी क्षेत्रों में व्याप्त उथल पुथल एवं आवश्यकताओं को उन्ही के व्यवस्थित करने का सफल प्रयास किया गया है|

अनुष्ठान

अघोर भैरव उस काल के प्रसिद्ध तांत्रिक थे| वह वज्रतीर्थ नामक विशाल श्मशान भूमि में जलती चिताओं के पास कराला देवी की मूर्ति के सामने मुंडमाल पहने हुए ताज़ी चर्बी से हवन करते थे| आहुति पड़ने के साथ ही साथ अग्नि की पिंगल लाल जिह्वा विकराल भाव से लपक पड़ती थी और क्षणभर के लिए वायुमंडल प्रकाश से व्याप्त हो जाता था| कुंड के चारों ओर नर कपालों में भिन्न-भिन्न हवन सामग्री रखी हुई थी| हर्ष को अघोरदण्ड ने आदेश दिया – "जो तेरा सबसे प्रिय है, उसका ध्यान कर|" चण्डमण्डना विचित्र भाव भंगी में पाँव पटकने लगी और अघोरदण्ड आहुतियों और फुत्कार से हवन मण्डल लोल कम्पित करता गया| जैसे ही बलि-बेला सामने आयी,सहसा महामाया, भट्टिनी, निपुणिका, विग्रहवर्मा वीर तलवार लिए खड़े हो गए| अपना बलिदान करने के लिए अघोरदण्ड ने चण्डमण्डना को आदेश दिया| तब निपुणिका आँधी की तरह आयी और चण्डमण्डना को पटक दिया और उसके हाथ का तलवार छीन लिया| तलवार लेकर निपुणिका ने विकट नृत्य शुरू किया| उसके पद संचार से धरती काँप उठी| हर्ष ने उल्लास के साथ आकर अघोरदण्ड को कंधे पर उठाया और ताण्डव नृत्य करने लगे| उन्होंने अघोरदण्ड को गंगा में फेंक दिया| गंगा और महासरयु के संगम पर अवधूत अघोरभैरव शव पर आसन जमाए ध्यान में बैठे थे| उन्होंने हर्ष को घसीटकर अपने पास ले आया| महामाया को करालदेवी की तरफ भेजा| उन्होंने कवि हर्ष देव को करालदेवी के स्तुति में श्लोक बनाने का आदेश दिया| आज भी इसी प्रकार की स्थिति देश में विद्यमान है| अवधूत, साधना का रहस्य बिना जाने नरबली की प्रथा आज भी चली आ रही है| द्विवेदी ने मिथकों के द्वारा वर्तमान समाज की इन समस्याओं पर देश का ध्यान आकर्षित किया है| आज भी भारत के

गाँवो में नरबली की प्रथा चल रही है| अंधविश्वास, लोगों को आगे बढ़ाने से रोक दिया है| आधुनिकता उनसे कोसों दूर है| इस स्थिति में क्या हमारे भारत की उन्नति हो सकती है? भारतियों के सामने यह एक प्रश्न-चिह्न होकर पड़ी रहती है| इसी प्रश्न को द्विवेदी ने मिथकों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है|

कल्पनाशीलता

महावराह, इस उपन्यास का केन्द्रवर्ती मिथक पात्र है| जिस समय जल प्लावन में डूबी धरती उग आई होगी, उसी समय आदिम मनुष्य ने इसके उद्धारकर्ता की परिकल्पना महावराह के रूप में की होगी| भारतीय परंपरा में अवतारवाद का संबंध विष्णु से माना जाता है| विष्णु के दशावतार की गणना वैदिकेत्तर वाग्मय में सर्वत्र की गई है| सामान्य रूप में ये अवतार है मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, राम, कृष्ण,बलराम, परशुराम तथा कल्कि| ऋग्वेद में वराह शब्द का प्रयोग मिलता है| वराहावतार संबंधी पहली धारणाशतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है| प्रजापति के तीन अवतारों – मत्स्य, कूर्म तथा वराह का इस ग्रंथ में स्पष्ट रूप से उल्लेख है| रामायण में वसिष्ट, पृथ्वी की उत्पत्ति का कथन करते हुए वराह अवतार का श्रेय ब्रह्म को देता है|

महाभारत के वनपर्व में दो स्थलों पर वराह अवतार का वर्णन है| प्रथम कथानक से ज्ञात होता है कि भयंकर रूपधारी पृथ्वी का उद्धार करने के लिए नारायण ने सींग और लाल नेत्रवाले वराह का अवतार धारण किया| इससे स्पष्ट है कि प्रथम वराह अवतार का श्रेय नारायण को है| लेकिन वनपर्व के द्वितीय कथानक के अनुसार वराह अवतार का श्रेय विष्णु को मिला है|

महावराह एक मिथक पात्र है, जिसमें चुराई हुई धरती को आगाध जलराशि से महावराह निकाल लाते है| मिथकों का प्रयोग सादृश्य या विसादृश्य के रूप में ले

आकर समसामयिक जीवन की समस्याओ पर प्रकाश डालता है| बाण भट्ट स्वयं महावराह है तो भट्टिनी धारिणी| यह एक शिथिल सादृश्य है| इस उपन्यास में मिथकीय रचना मध्यकाल के टूटे हुए समाज मे, मनुष्यता की खोज करती है| द्विवेदी ने देश काल की आवश्यकता के अनुरूप नारी को प्रकाश में लाने और उसके अन्दर की क्रांति को चमकाने की सफल चेष्टा की है| लेखक ने पुरुष के वैराग्य की दुर्बलता बतलाते हुए जीवन साधना में नारी के सहयोग को बड़े कौशल से सिद्ध किया|

द्विवेदी प्रेमदेवता का महत्व शंकर और कामदेव के प्रसंग में समझाना चाहते है| उन्होंने इसका निष्कर्ष यह निकाला कि कालिदास प्रेम की देवता अर्थात कामदेव को वैराग्य (शंकर) की नयनाग्नी से भस्म नहीं करना चाहते| बल्कि उसे तपस्या के भीतर से सच्चे प्रेम के देवता को आविर्भूत करता है| जो भस्म हुआ, वह आहार निद्रा के समान जड़ शरीर का विकार्य धर्ममात्र था| यही मिथ को द्विवेदी सुचरिता और तपस्वी के द्वारा स्पष्ट करते है| यह है प्राचीन मिथ की आधुनिक व्याख्या| वे बताना चाहते है कि पति-पत्नी का सहधर्म क्या है और यहाँ प्रेम का निर्वाह कैसे किया जा सकता है|

इस प्रकार आचार्य द्विवेदी ने पुराने मिथकों की व्याख्या और नए मिथकों के निर्माण के समय संपूर्ण विश्व में व्याप्त आस्था अनास्था, धर्म अधर्म, सफलता विफलता के मध्य होनेवाले संघर्षो, विरोधाभासो की नई व्याख्या भारतीय शास्त्र और नए सिद्धांतों को सामने रखकर की है|

नैतिक चेतना

मिथकीय परिकल्पना, नारी महिमा एवं नैतिक बोध को बनाये रखने के साथ ही साथ धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों, पाखण्डता और मिथ्याचारों को दूर कर भगवत धर्म पर अधिक बल देने के लिए था| उस में जातिवाद, सांप्रदायिकता,

आपसी भेदभाव, प्रांतीयता आदि अनेक ऐसे तथ्य थे जो भारतीय समाज के राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक थे|

जिज्ञासावृति

द्विवेदी हारी हुई निराशाग्रस्त मानव जाति को आशा का प्रकाश फैलाते हुए ज्वलन्त वाणी में यह समझाने का प्रयास किया कि राजा से घबराने की कोई आबश्यकता नहीं है, क्योंकि खुद प्रजा ही राजा की सृष्टि करता है|

आर्यार्त को शत्रु सेना के आक्रमण से मुक्त कराने का जो स्वप्न लेखक ने देखा, यह वास्तव में भारत को अंग्रेजों के हाथो से मुक्ति दिलाने का स्वप्न है|

इस उपन्यास के माध्यम से द्विवेदी ने पुरानी मिथ्कों की नई व्याख्या भी की है| जब सुचरिता के पति को ढूँढते उसकी सास, पति की माँ अपने पुत्र को तपस्वी वेश में पहचान लेती है तो अपने हृदय का उद्गार इस प्रकार करती है – "बेटा, तू मुझ अभागी को अभागे स्वर्ग में ऐसी कौन सी अप्सराएँ मिलती होंगी जिनके लिए तू इस मणि कांचन प्रतिमा को छोड़कर तपस्या कर रहा है|"[92] सुचरिता इस अवसर पर अपनी सास की दशा के विषय में कहती है – "समस्त जीवन के नैराश्यो और कष्टों की साक्षात् प्रतिमा, माता रोकर अपनी करुण कहानी सुना रही थी, उसकी आँखों में अश्रुधारा बह रही है और पुत्र निर्विकार भाव से उपदेश देता जा रहा है| मानो वह माता को पहचानता भी नहीं है, मानो उसकी माता भी सौ-पच्चास अन्य आर्यों की भांति एक सामान्य आर्य हो| मेरा स्त्रीत्व पति के इस ढोंग को बर्दास्त नहीं कर सका| परंतु कुछ बोल न सकी|"[93]

[92] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 217

[93] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 218

जब माँ के करुण क्रंदन को अपनी ढोंगी बेटे पर कुछ असर न हुआ तो माँ कठोर बनकर बोल उठी- "अरे मूढ़, तू रटी हुई बोली बोल रहा है| भंड है वह धर्माचार जो अपनी माता को पहचानने में लज्जा अनुभव करता है| इस संसार को और भी दुखमय बनाकर ही क्या तेरा सुख का राजमार्ग तैयार होगा?"[94] इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास के पात्र हमेशा जिज्ञासु होकर दिखाई देता है|

चारुचन्द्रलेख

सादृश्य

चारुचन्द्र लेख तांत्रिक साधनाओं को लेकर लिखा गया पहला उपन्यास है| प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से लेखक ने कोटि-कोटि जनता का मनोबल ऊँचा करके, उनकी शक्ति और सामर्थ्य को उत्तेजित कर, विदेशी आततायिओं और आक्रान्ताओं के विरुद्ध संगठित होकर बाहुबल से लड़ने का आह्वान किया है| योगियों की सिद्धियों का विरोध करते हुए अत्याचार का सामना करने के लिए प्रेरित करते हुए गोरक्षनाथ कहते है – "इतना स्मरण रखे कि आपकी साधना अकेले की साधना नहीं हो सकती| समस्त जगत के दुःख सुख, हास्य, रोदन आपको प्रभावित करेंगे| इसलिए आप जलते हुए शस्त्र क्षेत्रों की उपेक्षा नहीं कर सकते, टूटते हुए मंदिरों से आँख नहीं मूँद सकते,ललकते हुए शिशुओं और घिघियाते हुए वृक्षों की ओर से आँख नहीं बंद कर सकते| आप संगठित होकर ही संगठित अत्याचार का विरोध कर सकते है|"[95] यह वास्तव में हमारे वर्तमान समाज की जनता के लिए प्रेरणादायक है क्योंकि आज के लोग साधु संतो तथा योगियों पर विश्वास करते हुए कई तरह की पूजाये करके पूण्य

[94] बाणभट्ट की आत्मकथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 218

[95] चारुचन्द्र लेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 117

का आर्जन करने की कोशिश करते हैं| द्विवेदी कहते है कि मानवता से ही हमें अच्छा फल मिलेगा और अनाचार के विरुद्ध आँखे मूँदनेवाला पापी है|

उसी प्रकार मातृभूमि की रक्षा करना समस्त प्रजा का जन्मसिद्ध अधिकार एवं विधि विहित धर्म है| लेखक स्पष्ट करते है कि देश की स्वतंत्रता और स्वाभिमान की रक्षा मंत्र-तंत्र और सिद्धियों से प्राप्त नहीं करेगा, बल्कि आत्म बलिदान से की जा सकती है| स्वतंत्रता और राष्ट्र रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने में भी हिचकिचाना नहीं चाहिए|

उस समय के समाज में वर्णव्यवस्था जारी थी| ब्राह्मण पूजा कर्म करते थे| क्षत्रिय योद्धा थे| अब भी मंदिरों में पूजा कर्म करने का अधिकार मात्र ब्राह्मण को है| पुराने समय की लड़कियाँ धीर-वीर थी और ये लड़कों के वेश में वीरतापूर्ण युद्ध करके बड़े-बड़े मल्लो को पराजित कर देती है| उपन्यास में मीनासिंह इसका उदहारण है| अब हमारे समाज में लड़कियाँ सारे के सारे क्षेत्रों में चमक रही है| उनकी क्षमता पुरुषों के बराबर है| दिन-रात एक करके वे अच्छा कमाता है और परिवार का संचालन भी करता है|

गुप्तकालीन जनता कर्मफल पर विश्वास रखनेवाले है| विद्याधर भट्ट ने चंद्रलेखा की माँ से कहा – "हाँ माता, कर्मफल को कौन अन्यथा कर सकता है? आज महाशिवरात्री का दिन है| तू विश्वेश्वर मंदिर में अर्द्ध रात्री तक भक्ति से प्रतीक्षा कर|"[96] 'कर्मफल' का यह मिथकीय विश्वास आज भी प्रचलित है|

प्रस्तुत उपन्यास में विवाह के लिए जाति को महत्व नहीं देता था| सातवाहन ने चंद्रलेखा की जाति-पांति जाने बिना अपनी रानी बना लिया था| विवाह के लिए पंडित और पुरोहितों के मंत्रो को आवश्यक नहीं माना जाता था| आज के जमाने में

[96] चारुचन्द्र लेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 31

एक हद तक विवाह में जाति की चिंता न करते है|जो प्रगतिशील चिन्तक है जाति, धर्म आदि पर ध्यान न देकर तथा कोई मंत्र=तंत्र के बिना उनकी लडकियों की शादी करवाता है|

मध्यकालीन समाज की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी| आर्थिक स्थिति होने के कारण जन जीवन में विकृतियाँ आने लगी थी| निरंतर संघर्ष होने के कारण कृषि और उद्योगों की स्थिति भी अच्छी नहीं रही| यही स्थिति आज भी है| लोग यहाँ भूख के कारण मर रहे हैं| गरीबी, बेकारी, आदि से यहाँ की जनता तड़प रही है| किसान वर्ग कर्ज के कारण आत्महत्या करने लगे हैं| इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में वर्तमान समाज की समस्याओं को सामना रखते हुए द्विवेदी ने मिथकों का सन्निवेश किया है|

ऐतिहासिक घटनाएँ

चारुचंद्लेख बारहवीं एवं तेरहवीं शताब्दी के सामाजिक पतन की कहानी है| यह, वह समय था जब देश की प्राणशक्ति मंत्र-तंत्र, भूत-बेताल, डाकिनी, साधना आदि में थी| नवजागरण की प्रवृत्ति किसी में भी नहीं थी| रानी चंद्रलेखा कहती है – "संपूर्ण आर्यवर्त मेरी आँखों के सामने ध्वस्त हो रहा है| यहाँ के मंदिर और मठ, वृद्ध और बालक, ब्राह्मण और श्रमण अनाथ, पंगु भयग्रस्त है| किसी के जीवन का कोई मूल्य नहीं है| सारा उत्तरापथ व्याकुल है| जिधर देखो, उधर आतंक और भीती का साम्राज्य है|"[97] आज के समाज की स्थिति भी ठीक इस प्रकार है| यहाँ भाईचारे का भाव पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है| लोग सड़कों में मारे जाते है| खून की नदी हमारी गलियों में बह रही है| आपसी स्पर्धा, संघर्ष आदि का ताण्डव नृत्य यहाँ हो रहा है| साधारण जनता निराशा ग्रस्त है| आतंक, विद्रोह एवं भय से हम काँप रहे

[97] चारुचन्द्र लेख, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 25

है| उपन्यस का पात्र कारूनटी, सामाजिक कुरीतियों और भ्रश राजनायकों के षड्यंत्रों से विक्षुब्ध हो उठी थी और नाटी माता के नाम से कृष्ण भक्ति में तल्लीन होकर एकांत में निवास कर रही थी| इस प्रकार की छोटी ऐतिहासिक घटनाएँ इसमें विद्यमान हैं|

पुनर्नवा

सादृश्य

'पुनर्नवा' गुप्तकाल के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक वातावरण में लिखा गया उपन्यास है| इस समय की सामजिक स्थिति वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित हुई थी| वर्णव्यवस्था के मान्यता के अनुरूप ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था| उज्जयिनी में देवरात श्रुतिधर एवं देवरात चंद्रमौली के वार्तालाप से यह बात स्पष्ट है| ब्राह्मणों का कार्य अध्ययन अध्यापन का था| आज भी ब्राह्मण, समाज में उच्च स्थान के योग्य माने जाते हैं और वे ही पूजा कर्म के अधिकारी है|

विवाह के अवसर पर संगीत, नृत्य तथा अन्य कलाओं का आयोजन करना आज विशेष प्रथा बन गया है| प्रस्तुत उपन्यास में भी इसका उल्लेख है|

उचित एवं निष्पक्ष न्याय व्यवस्था का प्रमाण पुनर्नवा में प्राप्त होता है| धर्म की दृष्टि में अनुचित कार्य करनेवाला दंडनीय है, चाहे वह राजा हो या सामान्य जन|"[98] शासन के क्षेत्र में जनहितैषी राजतंत्र को आदर्श माना गया है| आज स्थिति बिलकुल भिन्न है| यहाँ जिसके पास पैसा है चाहे वह कितना भी अनुचित कार्य करे, वह कभी भी दण्ड का पात्र नहीं बनेगा| यहाँ गरीबी लोग ही सारे दण्ड अनुभव करते हैं| धर्म के ऊपर धन की विजय हमारे समाज की नियति है|

[98] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 146

इस उपन्यास की मुख्य समस्या है नर-नारी प्रेम की पहचान उसके सहज स्वाभाविक स्वरूप की स्थापना, उसकी निष्ठा का विभक्त रूप, लोक बाधा और समग्र समर्पण| यह मानव जीवन का एक सतत सत्य मूल्य है जिसकी स्वस्थता ही समाज की स्वस्थता है| 'पुनर्नवा' के प्रेम संबंध में जटिलता आ गई है| समाज में गणिकाओं का स्थान मिल गया है| वैवाहिक जीवन की योग्यता का प्रतीक है 'चंद्रा'| बारी के क्रय-विक्रय का प्रतीक है मदनिका| एक ओर मृणाल मंजरी एवं धुतादेवी पति परायण नारी है तो दूसरी ओर गोपाल आर्यक और चारुदत्त जैसे पति है जिनका प्रेम विभजित है|

'पुनर्नवा' में जिन-जिन बातों का उद्घाटन हुआ है वे किसी एक युग का व्यक्ति की नहीं चिरंतन है, सबकी है| व्यक्ति और समाज के संदर्भ में व्यवस्थाओं के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न उठाकर द्विवेदी ने विभिन्न कोणों से उस पर विचार किया है| उपन्यास की कथा आर्यक-चन्द्र, देवरात-मंजुला, देवरात-शर्मिष्ठा, चारुदत्त-वसंतसेना, चारुदत्त धुता, श्विलिक-मादी, प्रमाणित करती है कि उपन्यासकार नर-नारी के प्रणय संबंधों पर सामजिक परिप्रेक्ष्य में विचार करना चाहता है| प्रेम के अनेक और स्तर इस में है| एक तरफ चंद्रा का उद्दाम और रूढ़विरोधी प्रेम है तो दूसरी तरफ मृणाल का परंपरित भारतीय पत्नी के अनुरूप प्रेम| चंद्रा का प्रेम यदि वासनाकुलता की परिणति है, तो मृणाल का प्रेम साहचर्य जनित और सहज आकर्षण का परिणाम| देवरात और शर्मिष्ठा का प्रेम भारतीय पति-पत्नी का प्रेम है|

आचार्य पुरगोभिल, चंद्रमौली की किंबदन्तियों द्वारा पौराणिक कथाओ की नई व्याख्या प्रस्तुत करते है| सुमेर काका, राजा के विरोधी और क्रांतिकारियों के प्रेरणादायक है जो सुमेरु पर्वत की तरह अपने सिद्धांतों पर अटल रहते है| सत्य और न्याय के लिए मर मिटने को तैयार हो जाता है| चंद्रा को मुक्त करने के लिए आचार्य

पुरगोभिल और सम्राट से भी संघर्ष करते रहते है| वे समाज में व्याप्त जर्जर एवं अंध रुढियों को खण्डित कर उनके स्थान पर बुद्धि नया औचित्य स्थापित करना चाहते है| नए विधान को विधाता का विधान बताते हुए कवि चंद्रमौली देवरात से कहते है कि समाज की अशांति का कारण विधाता के विधान को न समझना है| वह आगे कहता है – विधाता ने जिस उद्देश्य से ऐसे मनोहर रूपों की सृष्टि की होगी वह पूरा नहीं हो रहा है| मनुष्य के बनाये विधान, विधाता के बनाये विधानों से टकराते है| उन्हें मोड़ते है, विरूप कर देते है| विधाता ने अपनी सृष्टि परंपरा को आगे बढाने के लिए प्रकृति को निर्देश दे चुके है| मनुष्य के चित्त ने इस निर्देश का औचित्य अस्वीकार कर दिया है| सारे कष्टों और दुखो के पीछे यही द्वंद्व है | गोपाल की व्यथा मनुष्य की बनाई सामाजिक व्यवस्था की देन है| इस व्यवस्था की आलोचना करने और बदलने का अधिकार मनुष्य को मिलना चाहिए|

'पुनर्नवा' में द्विवेदी ने नारी की सिंहवाहिनी और महिष मर्दिनी रूपों की विधिवत व्याख्या की है| देवरात कहता है – "देख बेटी, भगवती महामाया, नारी के रूप में केवल प्रेरणाशक्ति है, पुरुष के रूप में प्रेरणावाहिनी, पर तथ्यों की दुनिया में तेरी जैसी सुकुमार बालिकाओं के लिए महिषमर्दिनी उपासना संभव नहीं| जो पुरुष शूर है, धर्म के अनुकूल है, पापी से डरना नहीं जानते, अन्यायी का रक्तपान करते है वे सिंह है| मैं उन्ही को वाहन बनाकर धर्म स्थापना करती हूँ| जो तामसिक धर्मदूषी मदमस्त है, वे महिष उनका संहार करती हूँ|"[99]

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित नारी, समाज या व्यक्ति द्वारा प्रताड़ित नारी है| चंद्रा के रूप में वह समाज से लड़नेवाली तथा धूता के रूप में एक आदर्श स्वाध्वी

[99] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 86

गृहणी है| इस प्रकार, पुरानी कथाओं के द्वारा मिथकों का समावेश करते हुए, समाज के अनुरूप नवीन व्याख्याओं का सृजन द्विवेदी ने प्रस्तुत उपन्यास में की है|

अनुष्ठान

'पुनर्नवा' में मथुरा नगरी, बौद्ध, भागवत, जैन एवं शैव धर्मी का केन्द्र था| इसमें परंपरागत धर्म भाग्यवाद नियतिवाद, कर्मफलवाद, जन्म जन्मान्तर वाद, देववाद उपासना पद्धति, पूजा-पाठ, ज्योतिष आदि विद्यमान है| वृद्ध श्यामरूप से बुद्धों की उपासना के बारे में कहते है –"भारतीय, नागराजा को आभीर राजा भद्रसेन ने धकेला और चतुर्व्यूह में एक और वृष्णवीर जोड़कर पाँच वृष्णवीरों की पूजा चला दी| पाँच अवश्य होने चाहिए, चाहे बुद्ध हो, शिव हो या विष्णु हो|"[100]

'पुनर्नवा' में धर्मावतार आचार्य पुरागोभिल, माढव्य शर्मा, सिद्ध बाबा चंद्रमौली धर्म एवं दर्शन के प्रमुख पात्र हैं| देवरात का जीवन बौद्ध सन्यासवाद गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम और भगवत भक्ति से रहा | सन्यासिनी माता, वृद्ध, ब्राह्मण पूजारी, श्यामरूप के नाटकीय माता-पिता, मृणालमंजरी, भारशिवों, चडसेन की पत्नी आदि की जीवचार्य में भगवत धर्म के साथ शैव एवं बौद्ध उपासना पद्धति भी प्रकट हुई है| यज्ञसेन स्वयं शिव के उपासक थे, और आभिरंगन कृष्ण के उपासक थे| इस प्रकार की धार्मिकता के पीछे मिथकीय संकल्पनाएँ अवश्य है|

जिज्ञासावृति

'पुनर्नवा' में द्वेविदी ने पौराणिक कथाओं की नई व्याख्या प्रस्तुत करते है| इस उपन्यास में महात्मा देवरात मंजुला को देखकर कहते है – "छन्दों की रानी, तालों की नर्म सखी, बासी को ताज़ी करनेवाली पुनर्नव देवी, तुम नित्य नवीन होकर

[100] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 65

हृदय में उतरा करो तुम्हारे प्रत्येक पद संचार से प्राण का उद्बोधन होता है, मुरझाये अंकुर खिल उठते है| रानी, तुम दूसरों को पुनर्नवा प्रदान करती हो|"[101]

द्विवेदी ने 'पुनर्नवा' का रहस्य तीन स्तरों पर विविध संकेतों से स्पष्ट किया जाता है – 1 जर्जर चिर रोगी को नया जीवन देने की शक्ति जिस वनस्पति में विद्यमान है उसका नाम पुनर्नवा | 2 सौन्दर्य के द्वारा अंतः संस्कार को अभिव्यक्त करती है|

मंजुला का मत है कि जर्जर समाज में नई चेतना अभिनव प्राण शक्ति उड़ेल देने से, वह बिखरने से बचाया जा सकता है| यदि नए विचार नित्य नवीन रहे तो मुरझाये अंकुर खिल उठते है|

भय तथा आनंद

'पुनर्नवा' में देवरात का विश्वास है कि नारी का बाह्य सौन्दर्य आतंरिक निर्मलता के द्वारा रूपायित होता है| पाप और पूण्य के लक्षण युग के अनुरूप बदलते रहते है| यदि परिवर्तित सामाजिक स्थिति के अनुरूप पुरानी नई पीढ़ी की शक्ति सीमा आशा आकांक्षा को पहचानकर सामाजिक नियमों में उपयुक्त परिवर्तन नहीं करती तो क्रांति अवश्यंभावी हो जाती है|

अनामदास का पोथा

नैतिक चेतना

'अनामदास का पोथा' उपनिषद काल की रचना है| इसका आधार वेदों तथा उपनिषद ग्रंथ है| इसमें लौकिक युवा युवती के प्रेम कथा के माध्यम से अलौकिक समझे जानेवाले आध्यात्मिकता के धरातल पर इसे पहूँचाया है| यह उपन्यास प्रेम,

[101] पुनर्नवा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 66

अध्यात्म, दर्शन, मनोविज्ञान और वैश्वानर उपासना का अद्‌भुत संगम है| आचार्य द्विवेदी ने अपने उपन्यास में पारलौकिक समझे जानेवाले दर्शन को जीवन से जोड़ा है| उनकी दृष्टि में जीव जगत का संबंध सबसे बड़ा है| आत्मा से भिन्न कोई परमात्मा नहीं है| दर्शन जीवन के लिए है और तत्व चिंतन भी जीवन के लिए है| जिस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान जीवन को सुखमय बनाता है, उसी प्रकार तात्विक चिंतन से भी जीवन को जीने में सहायता प्राप्त होती है| जनसेवा को लेखक ने आध्यात्म मानकर, जीवन के प्रति नए और परिवर्तित दृष्टिकोण का परिचय दिया है|

सादृश्य

अलौकिक अदृश्य पदार्थों को चिंतन का विषय बनाकर आज दार्शनिक चर्चाएँ हो रही है| परमात्मा रहस्यमय है इसकी फायदा उठाते हुए लोग, साधू जनों को धोखा देकर आज घूम रहे हैं| कई तरह के अंधविश्वासों में जनता को फँसाकर, कई तरह की पूजाओं का आयोजन करके, ईश्वर का नाम बताकर ये वर्ग पैसा वसूल कर रहे हैं| प्रस्तुत उपन्यस में लेखक स्पष्ट रूप में एक सत्य का उद्घाटन करते हैं कि अपने भोगे हुए सत्य ही दर्शन है वही परमात्मा है| लोकसेवा, परदुखकातरता आदि मानवीय मूल्यों का साक्षात्कार होने से ही ईश्वर संतुष्ट होगा| वहीं परमात्मा का वास होगा|

प्रस्तुत उपन्यास में पुरुषार्थ की बात बताई गई है| धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से पहले तीन साधन है और अंतिम साध्य है| पहले तीन में धर्म सबसे बड़ा है| उसके अनुकूल रहकर अर्थ का उपार्जन करना चाहिए| उसी प्रकार वर्तमान साधू सन्तों को इशारा करते हुए द्विवेदी अपने उपन्यास में बताते है कि दूसरों के दुःख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न ही सबसे बड़ा तप है|

आज हमारे समाज में कई तरह के संतों को हम देखते हैं| ये लोग अपने मधुर भाषण के द्वारा लोगों को अपने हाथ में लेते है और धन कमाते है| ये संत वर्ग दीन – दुखियों की सहायता कभी नहीं करते है| द्विवेदी इस प्रकार के सन्तों से समाज को दूर रहने का आह्वान देते हैं|

आज हम अनुभव कर रहे हैं कि पारिवारिक विघटन से जनता तड़प रहे हैं| 'परिवार' को कोई विशिष्टता नहीं है| पुराने समय में 'कुटुंब' का अपना महत्व था| लेकिन आज की स्थिति ऐसी नहीं है| कुछ न कुछ कारण बताकर परिवार छिन्न-भिन्न हो रहा है| प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी कहते हैं कि पारिवारिक संबंध ही मनुष्य की मानसिकता को पवित्र और निर्मल बनाते हैं| जिस दिन लोग इस बात को भूल जाएगा, उस दिन समाज उच्छिन्न हो जाएगा|

उपनिषद काल में नारी का ऊँचा स्थान था| अनामदास का पोथा की जाबाला, ऋतंभरा, अरुन्धती आदि नारी पात्र इसका उदहारण है| उस समय के यज्ञों में पुरुष की भाँती नारी भी भाग लेती थी| गृहकार्य में भी वह कुशल होती थी| लेकिन आज स्थिति बिलकुल बदल गई है| स्त्री भोगी मात्र बन गई है| समाज में वह पुरुषों का शिकार बन गया है| कहीं भी बलात्कार की घटनाएँ हो रही है| वह अच्छी कमाती है, फिर भी वह पुरुषों का गुलाम है| उपनिषदकालीन समाज से आज का समाज इस बात पर बिलकुल भिन्न है|

जाबाला और रैक्व के प्रथम मिलन के अवसर पर वे दोनों संकोच और डर के साथ बातें करती है| इसका कारण तो यह होगा कि युवक-युवती के बीच स्वतंत्रता से बातें करने को समाज मना कर दिया है, वही स्थिति आज भी यहाँ विद्यमान है|

जिज्ञासावृति

पाप-पूण्य की बात को लेकर द्विवेदी अपना विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि जिस कार्य से किसी को शारीरिक या मानसिक कष्ट होता है वही पाप है और जिससे किसी का दुःख दूर हो उसका इस लोक और परलोक सुधर जाये, रोगी निरोग हो जाए, दुखी या सुखी हो जाये, भूखा अन्न पाए, प्यासा जल पाए, ये सब पूण्य है क्योंकि इनसे अंतःकरण में विराजमान परमदेवता प्रसन्न होते है|"[102]

वैराग्य की परिभाषा देते हुए द्विवेदी कहते हैं कि गलत चीज़ का त्याग वैराग्य है| वैराग्य से असत्य के परित्याग की शक्ति मिलती है| आज 'वैरागी' का नाम बताते हुए यहाँ जो लोग जनता को धोखा दे रहे हैं उनकी ओर उपन्यासकार ने संकेत किया है|

अनुष्ठान

उस समय युवतियों की मनोकामना की पूर्ति के लिए गान्धर्व पूजा का आयोजन था| इसी तरह की पूजाये आज सर्वत्र देखा जा सकता है| शादी के लिए, संतान लब्धि के लिए, नौकरी प्राप्त करने के लिए लोग तरह तरह की पूजाएँ करते हैं| आज के समाज में हम महसूस कर रहे है कि अमीर और गरीब के बीच की दूरी बहुत भारी है| जिसके पास पैसा नहीं है, उसका समाज में कोई स्थान नहीं है| शासक वर्ग भी धनी के साथ है| दीन-दुखियों पर वे ध्यान नहीं देते है| गरीब वर्ग दूसरों के सामने परिहास पात्र बन जाता है| लेकिन उपनिषद काल में राजा के लिए समस्त प्रजा उसकी संतान थी| राजा का, प्रजा की ओर ध्यान अपनी संतान की ही भांति रहना चाहिए, यही मान्यता थी| जिस राजा के राज्य में बच्चे और स्त्रियाँ भूख प्यास से व्याकुल होती हैं उसका सत्यानाश हो जाता है और नरक का अधिकारी होता

[102] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 65

है|"[103] राजा की शासन पद्धति लोकतान्त्रिक प्रतीत होती थी| उपन्यास में राजा जानश्रुति अपने मंत्रियों से उपदेश लेने के बाद ही निर्णय लेते थे| ये पात्र वर्तमान समाज के स्वेच्छाधिकारियों को एक सशक्त प्रहार है|

कल्पनाशीलता

द्विवेदी ने आध्यात्म को जनवादी पृष्ठभूमि देकर जन कल्याण साकार किया है| वैश्वानर उपासना में भी यही जनवादी दृष्टि है| बह्मज्ञान यहाँ लोकोन्मुख के संदर्भ में व्याख्यायित है| रैक्व की पीड़ा है कि इन दुखियों का दुःख दूर करने में मैं क्या कर सकता हूँ? वह सोचता है, 'मैं गाडी के नीचे बैठकर तप कर रहा था वह झूठा तप था| सही तपस्या गाड़ी चलाकर की जा सकती है|"[104] उसने माँ और महर्षि के सान्निध्य में विश्व की दुर्निवार जिजीविषा का साक्षात्कार किया है| माताजी रैक्व को वैश्वानर उपासना के बारे में कहती है – "तुन्हें पूर्ण रूप से शास्त्रज्ञ बनना हैं उसके बाद सभी बातों की शास्त्रीय विधि से परीक्षा करने के बाद तुम्हारे अन्तर्यामी और वैश्वानर जैसा कहे, वैसा ही करो| यह कभी मत भूलना कि ऐसा तप वास्तविक तप नहीं है, जिसमे समस्त प्राणियों के सुख-दुःख से अलग रहकर केवल अपने आपकी मुक्ति का ही सपना देखा जाता है| सारा चराचर जगत उसी परम वैश्वानर का प्रत्यक्ष विग्रह है जिसका एक अंश तुम्हारे अन्तरतर में प्रकाशित हो रहा है| सत्य से च्युत न होना, धर्म से च्युत न होना, निखिल चराचर रूप परम वैश्वानर को न भूलना|"[105] इसमें वैश्वानर का जो संकल्प है वह बिलकुल मिथक है|

धार्मिक स्थिति में कर्मफल सिद्धांत पर लोग अटल विश्वास रखते थे| उपन्यास का नायक रैक्व पर कर्मफल सिद्धांत का इतना प्रभाव है कि उसे ऐसा

[103] अनामदास अ पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 71

[104] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 142

[105] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ : 152

लगता है कि पीठ का सनसनाहट उसके बुरे कर्मो का ही फल है, क्योंकि उसने शुभा से ठीक व्यवहार नहीं किया | इस प्रकार देखें तो आध्यात्मिकता का परिवेश देते हुए, प्रस्तुत उपन्यास में मिथकों का समावेश द्विवेदे ने किया है|

इस प्रकार आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करने से पता चलता है कि उनके चारों उपन्यास संस्कृति, इतिहास और मिथक तत्व से परिपूर्ण है|

कहानी

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार उपन्यास और कहानियाँ हमारे साहित्य में नई चीज़ है| प्रारंभ में छोटे-छोटे उपन्यासों को 'कहानी' कहा जाता था| लेकिन बाद में सामजिक रुचि के प्रभाव के कारण कहानियाँ स्वतंत्र रूप से प्रचार में आई| द्विवेदी लिखते हैं कि "कोई भी कहानी तभी महत्वपूर्ण होती है, जब गंभीर और निर्विवाद भाव से सामान्य मनुष्यता की कठिनाईयों और द्वन्द्वो को चित्रित करती है| कहानी, केवल अवसर विनोदन का साधन नहीं है|"[106]

द्विवेदी ने कहानी और उपन्यास की भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए है कहा है कि "उपन्यास और कहानी दोनों एक ही जाति के साहित्य है, परंतु उनकी उपजातियाँ इसलिए भिन्न हो जाती है कि उपन्यास में जहाँ पूरे जीवन की नाप-जोख होती है वहाँ कहानी में सिर्फ एक झाँकी मिल जाती है| मानव चरित्र के किसी पहलू पर या उसमें घटित किसी एक घटना पर प्रकाश डालने के लिए छोटी कहानी लिखी जाती है|"[107]

[106] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कल्पलता, पृ : 86

[107] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य उदभव और विकास, पृ " 181

द्विवेदी के अनुसार कहानी लेखक का उद्देश्य संपूर्ण मानव जीवन को चित्रित करने का नहीं है, वरन् उनके चरित्र के एक अंग मात्र को दिखाना होता है| द्विवेदी की कहानियों को पढने से मालूम होता है कि उसमें सार्वदेशिक और सार्वकालिक मनुष्यत्व का अनुसंधान है| मनुष्य को पशु सुलभ मनोवृत्तियों से ऊपर उठाना ही उनकी कहानियों का लक्ष्य है|

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने कुछ छोटी सी कहानियों का सृजन किया है, जिसके माध्यम से उन्होंने वर्तमान विसंगितियों का चित्रण खींचा है| साथ ही साथ उन्होंने मानवीयता को ऊपर उठाने का प्रयत्न भी किया है| द्विवेदी की पहली कहानी है **'धन वर्षण'**| इस कहानी में द्विवेदी ने मनुष्य का, धन के प्रति लालच का चित्रण किया है| रुपये-पैसे के लिए मानव, मानव को मार डालता है| प्रेम, भाईचारा आदि अब नष्ट हुई है| इस कहानी का प्रमुख पात्र एक ब्राह्मण है| वे गाँव में रहनेवाले थे| यह ब्राह्मण को एक मंत्र जानता था और यह मंत्र की विशेषता तो यह है कि एक विशेष प्रकार के नक्षत्र योग आने पर जब उसका प्रयोग किया जाय तो आकाश से धन की वर्षा होगी| एक दिन ब्राह्मण अपने बुद्धिमान शिष्य के साथ घर से बाहर आये| उन्हें जंगल के रास्ते से जाना था| उस जंगल में पाँच सौ डाकू रहते थे| ब्राह्मण और शिष्य डाकुओं के हाथ में फँस गया| डाकू ने ब्राह्मण को पकड रखा और शिष्य से कहा कि रुपये लेकर आने से ही हम इस ब्राह्मण को छोड़ दूँगा|

जाते समय शिष्य ने अपने गुरु को नमस्कार करके कहा – "मैं दो-एक दिन के भीतर ही लौटूँगा, आप डरिये मत| लेकिन आपको मैं सावधान किए जाता हूँ कि आज धन वर्षण का योग है, ऐसा न हो कि आप दुखी होकर वर्षण करें| यदि करेंगे तो आप खुद ही मरेंगे और ये पाँच सौ डाकू भी मरेंगे|"[108] ऐसा कहकर शिष्य रूपये

[108] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 129

के लिए चले| डाकुओं ने ब्राह्मण को सताने लगे| ब्राह्मण ने सोचा कि मैं क्यों इतना कष्ट सहूँ? धन वर्षण का योग तो दिखाई दे रहा है| उन्होंने डाकुओं से, स्नान करके नया वस्त्र पहनकर, चन्दन का लेपन करने और माला पहनने की अनुमति माँगी| डाकुओ ने उन्हें अनुमति दी| ब्राह्मण ने ऐसा करके, आकाश की ओर देखकर मंत्र पढ़ा और इतने में आकाश से धन की वर्षा होने लगी| डाकू, उन धन को लूटकर, अपने कपडे में बंधकर चला| ब्राह्मण भी पीछे चलने लगे| कुछ दूर जाने के बाद वे अन्य कुछ डाकुओं से मिला और वे इनको रोका| उनका लक्ष्य भी धन था| पहलेवाले डाकुओं ने कहा कि धन की इच्छा हो तो तुम इस ब्राह्मण से पूछो| वह आकाश से धन की वर्षा कर सकता | यही हमें ये सारे धन दी है|

नए डाकुओ ने पहले के डाकुओं को छोड़कर,ब्राह्मण को पकड़ लिया और उनसे धन माँगा| ब्राह्मण ने कहा कि वर्ष में एक बार ही इस प्रकार की धन वर्षा होती है| इसलिए तुम एक साल ठहरो| यह सुनकर डाकुओं को गुस्सा आ गया और वे ब्राह्मण को काटकर रास्ते पर फेंक दिया और साथ ही दौड़कर पहलेवाले डाकुओ को पकड लिया| दोनों दलो में भारी युद्ध हुआ| अंत में दो आदमी बच गए, बाकी सब मर गए| बचे हुए आदमी सारा धन लेकर जाते- जाते एक गाँव के पास आये और वहाँ उन्होंने एक पेड़ के नीचे रूपये को छिपा दिया| उनमें से एक तलवार लेकर धन के लिए पहरा देने लगा और दूसरा खाना लाने के लिए गाँव गया| पहरा देनेवाला व्यक्ति ने सोचा कि उसके आने के पहले मैं इस धन को लेकर कहीं जाऊँगा, नहीं तो इसे बाँटना पड़ेगा| दूसरे ने सोचा कि भात में विष मिलाकर मैं उसे खिलाऊँगा और मैं सारा धन अपना बना लूँगा| दूसरे आदमी इस प्रकार विष मिलाये भात लेकर आया तो पहलेवाला तलवार से उसका काम तमाम कर लिया और उसके बाद विष से युक्त भात खा लिया| दोनों मर गए| इस तरह उस धन के लिए सभी का विनाश हुआ|

गुरु को छुडाने के लिए शिष्य, रुपया लेकर जंगल पहुँचा तो वह अपने गुरु को न देख पाया और धन रत्न चारों ओर बिखरे पड़े है| देखकर ही उन्हें समझ में आया कि गुरु ने अपनी बात न मानी| वे धन वर्षा करके सबके साथ स्वयं भी नष्ट हो गए है|

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने यह व्यक्त किया है कि स्वार्थता के कारण ही यहाँ सर्वनाश हुआ है| भारतीय संस्कृति में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान है| गुरु शिष्य संबंध हमारी अपनी विशेषता है| प्रस्तुत कहानी में गुरु के प्रति शिष्य का आदर व्यक्त होता है| यहाँ शिष्य अपने गुरु के लिए रुपया लेकर आने को तैयार हो जाता है| वर्तमान समाज के गुरु शिष्य संबंध में जो कमी आ गई है, इस पर विचार करने का अवसर भी प्रस्तुत कहानी प्रदान करती है|

इस कहानी का ब्राह्मण. मंत्र पढ़कर धन वर्षा करती है| पूजा, मंत्र आदि भारतवर्ष में वेदकाल का योगदान है|

इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि कभी कभी गुरु, शिष्यों को भी मानना पड़ता है| यदि ब्राह्मण अपने शिष्य की बात मान ली तो यहाँ इस प्रकार का मार काट नहीं होता|

द्विवेदी ने एक मिथक कथा के माध्यम से वर्तमान समाज का चित्रण खींचा है| हमारे समाज में धनार्जन के लिए दूसरों को मार डालनेवाले जो लोग है, उन सभी के प्रतीक के रूप में डाकूओं को इसमें चित्रण किया है| उसी तरह कुछ मानव ऐसा है कि सोचे बिना वे कार्य करते हैं और अंत में उसे दुःख अनुभव करना पड़ता है| यहाँ ब्राह्मण अपनी विपत्ति का सोच विचार न करके धन की वर्षा करती है और इससे ही सर्वनाश होता है|

उनकी दूसरी कहानी **मंत्र-तंत्र** का प्रमुख पात्र है कुमार|

कुमार, अच्छा आदमी है| कभी जीव हत्या नहीं करता, दूसरे की चीज़ न लेता, झूठ नहीं बोलता, कोई नशा न खाता और दूसरों की स्त्री को माँ के समान समझता| वह अपने परिश्रम से अपने छोटे गाँव की जनता को एकत्रित किया और उन्हें भी ईमानदार और परिश्रमी बनाया| उस गाँववाले कोई भी अपराध नहीं करता था| गाँव के मुखिया ने सोचा कि 'अन्य गाँवों में लोग शराब पीते है, कई तरह की गलतियाँ करते है और इससे उन्हें आमदनी भी मिलती है| लेकिन कुमार ने इस गाँव को ऐसा बनाया है कि ये न शराब पीते है, न जीव हिंसा करते हैं|"[109]

मुखिया, राजा के पास जाकर गलत समाचार देता है कि हमारे गाँव के सभी लोग चोर हो गए हैं, इनका उपद्रव बहुत बढ़ गया है| राजा ने सभी गाँववाले को बाँधकर आने का हुकुम दिया| गाँववाले सभी हाज़िर हुए| राजा ने बिना कुछ पूछे आज्ञा दी कि हाथी के पैर से कुचलकर इन्हें मार डालो| राजमहल के आँगन में सभी ने खड़ा किया| हाथी मँगवाया गया| कुमार ने सभी लोगों से कहा कि "तुम कभी भी राजा से गुस्सा मत करना| हमें अभी यह हाथी मार डालेगा| अपना शरीर जैसे अपने को अच्छा मालूम होता है और उस पर अपना जैसा प्रेम है, राजा के शरीर के ऊपर भी हम लोगों में वैसा ही प्रेम हो|"[110]

हाथी, उन्हें मारने के लिए आगे बढ़ा, लेकिन वह किसी तरह आगे बढ़ न सका| चिल्लाकर पीछे लौट आया| अनेक हाथियों को ले आने पर भी राजा की आज्ञा का पालन न कर सका| राजा ने कहा कि इनके हाथ में कोई दवा होगा| इस पर भी खोज हुई, लेकिन कुछ भी नहीं मिला| फिर राजा ने सोचा कि इन्हें कुछ मंत्र-तंत्र जानते है| उन्होंने इन लोगों से इसके बारे में पूछा तो उत्तर मिला कि हम लोग कोई दूसरा मंत्र नहीं जानते| हम जीव हिंसा नहीं करते, दूसरे की चीज़ नहीं

[109] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 131

[110] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 132

लेते, झूठ नहीं बोलते और शराब भी नहीं पीते| सबको मित्र समझते हैं और दान भी देता है| ग़रीबों के लिए तालाब खोद देते है और घर बना देते है| यही हमारा मंत्र है, और कोई मंत्र हमें नहीं जानता| इनकी बात सुनकर राजा खुश हुए| दुष्ट मुखिया को उचित सजा मिली|

प्रस्तुत कहानी से हमें मालूम होता है कि जो भलाई करता है वह हमेशा सुखी रहेगा| उन्हें कोई बिगाड़ नहीं सकता| भलाई करनेवाले की रक्षा ईश्वर अवश्य करेगा| इस कहानी में हाथी आगे बढ़ नहीं सका, यह भगवान की लीला ही है| इस कहानी का कुमार नामक जो पात्र है, वह परिश्रमी है, भला मानस है| वह अपने परिश्रम से सारे गाँव को एकता के सूत्र में बंधकर, उन्हें अच्छे रास्ते पर चलाया| मृत्यु आने पर भी वह हिचकता नहीं| वह अपने साथियों से बताता है कि राजा से कभी भी क्रुद्ध न होना| जिस प्रकार हम अपने शरीर से प्रेम करते हैं, उसी प्रकार हम दूसरों के शरीर को भी प्रेम करना है| इस उक्ति में समाज कल्याण की भावना व्यक्त है जो हमारी संस्कृति की प्रमुख विशेषता है|

हमारे समाज की नियति है कि दूसरे की भलाई कोई नहीं चाहता| अपने स्वार्थपूर्ति के लिए वे कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं| कहानी में जो मुखिया है वह इस प्रकार के लोगों का प्रतीक है| अंत में अपनी गलती के लिए सजा भी मिलती है| कहानी का 'राजा', कोई खोज-खबर किए बिना गाँववालों को सजा देते है| एक शासक को कभी भी ऐसा नहीं होना चाहिए| वास्तव में इस कहानी का 'राजा', वर्तमान समाज के शासक वर्ग की प्रतिनिधि है जो अनीति तथा अन्याय का साथ देता है|

व्यवसाय बुद्धि नामक कहानी के द्वारा द्विवेदी ने मानवीय मूल्यों की प्रधानता का उद्घाटन किया है|

किसी एक देश में राजा के एक धन रक्षक थे, जो पण्डित और बुद्धिमान थे| उसमें एक अत्भुत गुण था| वे कुछ भी देखकर, बाद को उसका फलाफल कहने में समर्थ थे| एक दिन रास्ते में एक मरे चूहे को देखकर उसने कहा कि "यदि कोई इस मरे चूहे को लेकर व्यवसाय आरंभ करें, तो उसे बड़ा लाभ होगा|"[111] यह एक गरीब, लेकिन बुद्धिमान युवक ने सुना और वह चूहे को लेकर बाज़ार की ओर चला| वहाँ एक दूकानदार अपनी बिल्ली के लिए खाना खोज रहा था और वह एक रूपये देकर चूहे को खरीद लिया|

युवक ने इस पैसे से गुड़ खरीदा और वह थके हुए परिश्रमी माली को दिया| माली खुश होकर उसे कुछ फूल दिए| वह फूल बेचकर कुछ अधिक गुड ख़रीदा और बगीचे में जाकर थकी हुई मालियों को खिलाया| खुश होकर माली उसे ज़्यादा फूल दिए और युवक बाज़ार जाकर फूल बेच दिया और कुछ अधिक पैसा पाया|

आँधी और बारिश के कारण राजा के बगीचे की सूखी टहनियाँ गिर पड़ी| उसे हटाने का कार्य युवक ने किया| सारी लकड़ी इकठ्ठा करके वह राजा के कुम्हार को दे दिया, जो लकड़ी के लिए ढूँढ रही थी|

उस नगर में पाँच सौ घसियारे थे, वे रोज़ अपने घोड़ों के लिए बहुत दूर से घास लेकर आते थे और वे बहुत थके पाए थे| इस प्रकार थके हुए को युवक पानी देने लगा| इसी समय युवक की दो सौदागरों से मित्रता हुई| उन्होंने बताया कि कल एक घोड़ो का सौदागर पाँच सौ घोड़ो को लेकर बेचने आयेगा|" युवक उन पाँच सौ घुसियारों से कुछ घास की माँग की| वे उसे घास दी| घोड़े की सौदागर ने युवक से ही घास को खरीद लिया और अच्छी आमदनी हो गई|

[111] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 133

कुछ दिनों के बाद एक बड़ा सौदागर जहाज़ में माल लेकर बंदरगाह पर आया| युवक ने पूरा माल उनसे खरीद लिया और अन्य व्यापारियों को बेचा| इससे उन्हें दो लाख रूपये का लाभ मिला और वह अपने शहर की ओर लौटा| फिर उसे राजा के धन रक्षक की याद आई| वह अपने लाभ से एक लाख रूपये लेकर उनके पास गया| धन रक्षक ने पूछा कि तुम इतने रूपये कहाँ पाए? युवक ने कहा कि आपकी बात से उस मरे हुए चूहे को लेकर व्यवसाय करने से मुझे दो लाख रूपये का लाभ हुआ| धन रक्षक संतुष्ट हुए, लेकिन उन रुपयों को उन्होंने नहीं लिया|

प्रस्तुत कहानी में, कुछ भी देखकर उसका फलाफल कहने की, धन रक्षक की जो क्षमता है, वह भारतीयों का विश्वास मात्र है| ज्योतिष, शकुन, लक्षण देखकर फल बताना आदि पर भारतीय संस्कृति विश्वास रखते हैं| द्विवेदी ने प्रस्तुत कहानी के द्वारा इस विश्वास को पुष्ट करने का प्रयास किया है|

गरीब युवक को दो लाख रूपये लाभ मिलता है, तब वह धन रक्षक की याद करके उसके पास आता है और लाभ का आधा भाग उन्हें देने को तैयार हो जाता है| उन्नति में भी, वह उस रास्ते की याद करता है जहाँ से वह चला था| यह आदमी का एक परम प्रधान गुण है, जो आज हमारे समाज से नष्ट हो गया है|

बड़ा क्या है? नामक कहानी, मानव चरित्र की प्रधानता को व्यक्त करनेवाली है| एक राजा की राजसभा में एक ब्राह्मण रहते थे| वे पण्डित थे| और साथ ही साथ सुशील भी थे| हिंसा, चोरी आदि नहीं करते थे| सभी उसका आदर सम्मान करते थे| एक दिन उन्होंने सोचा – "सभी मेरा इतना श्रद्धा भक्ति क्यों करते है? मेरी जाति के ? या मेरे कुल के लिए? या देश, विद्या या चरित्र?"[112] इसकी परीक्षा लेने के लिए वे राजा के कर्मचारी, जो राजमहल में रूपये-पैसे का हिसाब

[112] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 136

रखता था, वहाँ पहुँचता है| वे उस कर्मचारी के रखे गए रूपये से कुछ चोरी की| कर्मचारी को यह मालूम हुआ कि ब्राह्मण ने अपने रूपये की चोरी की है| लेकिन आदर के कारण वह चुप बैठा| दूसरे दिन भी ब्राह्मण ने इस प्रकार किया| इस बार कर्मचारी, ब्राह्मण को पकड़कर राजा के पास ले गया| राजा को आश्चर्य हुआ कि इतना ईमानदार ब्राह्मण ने यही चोरी की है और उन्होंने ब्राह्मण को उचित दण्ड देने की आज्ञा दी| ब्राह्मण ने कहा – "महाराज, मैं चोर नहीं हूँ| आप लोग मुझसे प्रेम करते है, बड़ा आदर सम्मान करते है| यही देखकर मैं ने सोचा कि इतना सम्मान किस लिए है? इसकी परीक्षा के लिए मैं ने धन चुराया| अब मैं समझ रहा हूँ कि जो कुछ मान-सम्मान है, सब कुछ चरित्र के गुण से है|"[113] ब्राह्मण,इसके बाद सन्यासी होकर तपस्या करने गए| इस कहानी में ब्राह्मण को परमोन्नत स्थान दिया गया है| वे उच्च कुल के हैं| भारतीय संस्कृति भी यह स्वीकार करते है कि ब्राह्मण वर्ग, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से कहीं ऊँचा है और वे ही पूजा करने योग्य हैं| प्रस्तुत कहानी के माध्यम से द्विवेदी जी यह बताना चाहते हैं कि जाति, कुल, देश, विद्या आदि सभी से ऊँचा है मानव का चरित्र| चरित्र अच्छा है तो अवश्य ही ब्राह्मण की तरह दूसरों के आदर का पात्र बनेंगे| चरित्र बुरा है तो सभी उसे घृणा करेंगे, चाहे वह ब्राह्मण हो या अन्य किसी जाति का हो|

देवता की मनौती में कहानीकार ने एक राजकुमार की ईमानदारी का चित्रण मिथकों के माध्यम से खींचा है| किसी राजा के एक पुत्र थे| राजकुमार थोड़ी उम्र में ही नाना विद्याओं को सीखकर खूब पंडित हो गए| इस समय काशी के लोग पर्व के दिन खूब धूम-धाम से देवी की पूजा करते थे| फूल के अलावा जीव-जन्तुओ को मारकर, उनके रक्त मांस से भी वे पूजा करते थे| राजकुमार ने सोचा कि यहाँ के

[113] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 138

लोग जीव जन्तुओ को मारकर अधर्म कर रहे हैं| मैं जब राजा हूँगा, तो जैसे लोगों को कोई कष्ट देकर, इस प्रथा को दूर कर लूँगा| इस दिन राजकुमार घूमने के लिए बाहर निकला| रास्ते में उन्होंने देखा कि एक भारी बरगद के पेड़ के नीचे सैकड़ो आदमी खड़ा है और वहाँ कोई पूजा कर रहे है| उनकी धारणा है कि उस पेड़ के नीचे कोई देवता का वास है और उस देवता की पूजा करने से हमारी इच्छा सफल होगी| इसके लिए वे जीव जन्तुओ को मारकर देवता को प्रसन्न करता था| राजकुमार ने भी वहाँ जाकर प्रार्थना की| इसके बाद प्रतिमास वे यहाँ आकर पूजा करने लगे|

राजा की मृत्यु होने पर राजकुमार ही राजा के पद पर अभिषिक्त हुए| वे धर्म का पालन करते हुए शासन करने लगे| जीव-वध करके पूजा करने का रिवाज़ अपने राज्य से हटाने का निश्चय करते हुए राजकुमार ने अपने कर्मचारियों को बुलाकर कहा – "आप लोग शायद देखा होगा कि मैं बीच बीच में बरगद के देवता के सामने हाथ जोड़कर प्रणाम करता था| मैं ने इसी समय देवता के सामने यह मनौती की थी कि राज्य पाने पर मैं उसकी पूजा करूँगा|"[114] मैं ने मनौती की है कि हमारे राज्य में जितने लोग है, जो जीव हत्या करते है, जो झूठ बोलते हैं, चोरी करते है और अन्य पाप कर्म करते हैं, मैं उन्ही के रक्त, मांस और कलेजे से उस देवता की पूजा करूँगा?" मंत्री, राजा के आदेश की घोषणा कर दी और नतीजा यह हुआ कि राजा की मनौती कभी नहीं मनायी गयी|

प्रस्तुत कहानी में द्विवेदी ने काशी के पर्व का विवरण दिया है| पुराने समय से लेकर हमारा देश उत्सव, मेला आदि को प्रधानता देता है| उसी तरह देवी-देवताओं की पूजा करना और उस पूजा के द्वारा अपनी मनोकामना के पूर्तिकरण का विश्वास भारतीयों की विशेषता है| भारतीय संस्कृति में देवी-देवताओं का प्रमुख स्थान है|

[114] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 139

'अछूत' कहानी में द्विवेदी ने वर्तमान समाज की कुरीतियों का चित्रण खींचने का प्रयास किया है|

नीमू, अछूत गरीब युवक है| वह अपने काम के बाद रात को घर लौट आ रहा था| थकावट के कारण वह बेहोश होकर गिर पड़ा| उसकी करुण पुकार सुनकर, रानी, जो एक वेश्या थी, वहाँ पहुँच गई और अपने नौकर की सहायता से रानी, नीमू को लेकर अपने घर गया| वह नीमू की देखभाल करने लगा और इतने में वह आँख खुला| नीमू, रानी से कहने लगा कि मैं भंगी हूँ, मेरे कारण आपका घर अशुद्ध हो गया है| यह सुनकर रानी ने कहा कि मैं आज तक यही जानती थी कि केवल मैं ही पतिता हूँ| इस घटना के बाद इन भाई-बहन का संबंध अटूट हो गया| नीमू, रानी को बहुत आदर करता था| एक दिन शहर से नीमू ने सुना कि उसकी बहिन रानी ने किसी की हत्या करके बंदी हो गया है| नीमू दौड़कर जैल पहुँचा तो रानी ने कहा कि "एक दुष्ट मेरा धन-जेवर सब कुछ लेकर,मुझे मारने जा रहा था, तभी मैं ने उसे मार डाला|"[115] फैसला करने को, न्यायाधीश तैयार हुए| तब नीमू ने कहा कि खूनी मैं हूँ| रानी बहुत कहने पर भी वह न माना| नीमू, सजा को स्वीकार करते हुए आगे चला| रानी चिल्ला रही थी कि नीमू सब झूठ बोल रहा है, मुझे बचाने के लिए| लेकिन कोई न सुना|

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार भारतीय समाज के भाई-चारे को व्यक्त करते है जो अब यहाँ से नष्ट हो रही है| भारतीय संस्कृति हमेशा स्त्रियों का आदर करती है और उनका उद्धार करना चाहती है| हमारा विश्वास है कि नारी ही घर का दीप है| घर का संचालन उनके हाथों में सुरक्षित है| द्विवेदी हमारे समाज की छुआछुत की ओर भी प्रस्तुत कहानी में इशारा करते हैं| छुआछूत हमारा अभिशाप है| इस

[115] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 147

कहानी का पात्र नीमू, अपने आगमन से दूसरों का घर अशुद्ध करना नहीं चाहता| इसलिए ही वह रानी से कहती है कि मेरे कारण आपका घर अशुद्ध हो गई हूँ| भंगी को हमारे समाज में कोई स्थान नहीं है| प्रस्तुत कहानी के माध्यम से अपनी मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए द्विवेदी कहते हैं कि मनुष्य चाहे भंगी हो, वेश्या हो, निम्न जाति के हो, उनकी मनशुद्धि याने अच्छे चरित्र की ही प्रधानता है| ईश्वर के सामने सभी एक है| उनके सामने जाति तथा धर्म को कोई स्थान नहीं है| विपरीत परिस्थितियों का सामना करने से ही नारी वेश्या बनती है और पापकर्म करती है| वे हमें सन्देश देते हैं कि साधू में एक पापी छिपा रहता है और पापी में साधू|

प्रतिशोध नामक कहानी के माध्यम से द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति के अपने कुछ विश्वासों का उल्लेख करते हुए यह स्थापित ने का प्रयास किया है कि हमें अपने कर्मों के अनुसार ही फल भोगना पड़ेगा| इस कहानी का प्रमुख पात्र एक सेठजी है जिसका नाम है पांडू| वह एक दिन काशी जा रहा था| वर्षा के कारण रास्ते में कीचड़ भरा था| जाते समय उसने एक सन्यासी (श्रमण नारद) को देखा| वह भी काशी जा रहा था| सेठजी ने उसे भी अपनी गाडी में लेकर आगे बढ़ा| रास्ते में पांडू ने देखा कि एक दूसरी गाड़ी कीचड़ में डूबे हुए था| वह एक गरीब कर्षक देवल की गाडी थी| अपनी यात्रा के बाधा पहूँचाने पर पांडू को बहुत गुस्सा आया| देवल की प्रार्थना अनसुना करके, उसे धकेल कर वह अपनी गाडी को आगे बढाया| सन्यासी, तुरंत ही गाडी से उतारकर बोला कि मैं उस गरीब कृषक की सहायता करके ही काशी जाऊँगा|

श्रमण नारद (सन्यासी) देवल के पास गए| उसने देवल के साथ मिलकर, गाडी को उठाने तथा चावल से भरी थैली को गाडी में बंधने के लिए सहायता की|

देवल को मालूम हुआ कि यह सन्यासी निश्चय ही एक परोपकारी है| इसलिए उनका आदर करके पूछा कि मैं ने कभी भी उस सेठजी से कोई बुराई नहीं की, फिर भी उन्होंने मेरे साथ इतना अन्याय क्यों किया? इसके उत्तर में नारद बोले – "इस समय तुम जो कुछ भोग रहे हो तुम्हारे पहले के किए कर्मो का फल है| मनुष्य जैसा बोता है, फसल भी वैसी ही काटता है|"[116] दोनों आगे चले| रास्ते में उन्हें एक थैली मिला जिसमें अशर्फियाँ भरा था| सन्यासी को मालूम हुआ कि यह सेठजी की थैली है| सन्यासी ने देवल से कहा कि काशी जाकर, सेठ पांडू को ढूँढ निकालो और यह थैली उन्हें दो| वे तुम्हारे साथ जो अन्यास किया है उसे भूल जाओ| देवल काशी की ओर चला| इधर सेठजी को जब पता चला कि अपनी थैली किसी ने चोरी की है तब उसने अपने नौकर महादत्त को पकड लिया| असल में महादत्त निरपराधी था, वह अपने कर्मो का फल भोग रहा था|

काशी में मल्लिक नामक सौदागर को जब खबर मिली कि देवल के पास एक गाडी भर खूब अच्छा चावल है तब उसने अच्छा दाम देकर उस चावल को खरीद लिया| देवल को बहुत रूपये मिले| देवल, सेठजी का थैली वापस दिया तो सेठजी को बहुत खुश हुआ और महाद्त्त को स्वतंत्र कर दिया| सेठजी ने सोचा कि मैं ने इस मिसान के साथ कितना बुरा व्यव्हार किया, कितना कष्ट दिया, फिर भी वह मेरे साथ कितना अच्छा व्यवहार करता है| शायद उस सन्यासी ही इसका कारण होगा| सेठजी को, उस सन्यासी से मिलने की इच्छा हुई| उसने बौद्ध मठ में जाकर श्रमण नारद से मिला| नारद कहने लगा कि जैसा बीज बोयेंगे, वैसा ही फल भी होगा| दूसरों को दुःख देकर उससे अपने दुःख का बीज लगाया जाता है| इसी तरह दूसरे को सुख देकर अपने सुख का बीज बोया जाता है| सेठजी सन्यासी की वन्दना करके

[116] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 142

वापस आये| कौशाम्बी राजा के विर्देशानुसार पंडू सेठ रत्नों का मुकुट बनाकर, अपने सिपाहियों के साथ राजा को मिलने गए| रास्ते में एक जगह थोड़ी खतरनाक थी| सेठजी ठीक इस जगह पहुँचने पर डाकुओं ने उसे घेर लिया| कीमती मुकुट और अन्य रत्नों को लेकर डाकू भाग गए| सेठजी दुखी होकर सोचने लगा कि मैं ने कितने लोगों को दुःख दिया है, मैं ने जो बीज बोया है उसी का यह फल मिल रहा है| पश्चाताप से उसका मन शुद्ध हुआ|

कौशाम्बी के जिस रास्ते में डाकुओ ने पांडू का धन-रत्न आदि लूट लिया था उसी रास्ते से एक बौद्ध सन्यासी चला आ रहा था| उसके हाथ में एक ग्रंथ थे जिसे वह एक कपडे से ओढा हुआ था| एक डाकू ने आकर सन्यासी को मार दिया और वह धरती पर गिर पड़ा| डाकू ने कीमती चीज़ समझकर उस ग्रंथ को छीन लिया| पीड़ा के कारण साधू हिल न सका|

दूसरे दिन धीरे धीरे वह चलने लगे| उसने देखा कि कोई आदमी अबोध पड़ा है| सन्यासी उसके पास आकर सेव-सुश्रुषा कने लगे| आदमी जब आँखे खुली तो वह हुक पड़ा और कहा – कल मैं ने ही आपका आक्रमण किया था| इसके बदले आप मेरा उपकार करने आये है| अन्य डाकुओं ने मेरा धोखा देकर चला गया है| भिक्षु ने शांत से कहा कि पाप करने की इच्छा मन से छोड़ दो और सभी जीवों के प्रति दया का व्यवहार करो| डाकू ने सन्यासी से अपनी कहानी सुनाई कि वह पांडू सेठ का नौकर महादत्त है और कई पाप कर्म किए है| सेठजी से बदला चुकाने के लिए मैं ने ही उसके मुकुट की चोरी की है| अपने जीवन में, मैं कुछ भी भला काम न कर सका| महादत्त ने कहा कि सेठजी का सारा धन संपत्ति एक गुफा में सुरक्षित है| इतना कहते-कहते उसका जीभ बंद हो गए| यह सन्यासी श्रमण आरद ही था| कहानी के अंत में द्विवेदी कहते है कि कालधर्म के अनुसार जब सेठजी की जीवन यात्रा समाप्त

हो आयी तो मृत्यु शय्या पर सोये-सोये उन्होंने अपने बाल-बच्चों को बुलाकर कहा – "जो दूसरे को दुःख देता , वह अपने को ही दुःख देता है, और जो दूसरे की भलाई करता है वह अपनी ही भलाई करता है|"[117] कहानी यहाँ समाप्त होती है|

प्रस्तुत कहानी के द्वारा द्विवेदी ने कुछ मिथकीय पात्रो के माध्यम से यह व्यक्त करना चाहा कि अपने किए गए कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ेगा चाहे वह अच्छा हो या बुरा हो| भारतीय जीवन दर्शन का एक सिद्धांत, जिसे कर्मफल नाम से व्यवहत किया जाता है, विदेशागत जातियों के लिए भले ही प्रारंभ में स्वीकार्य न रहा हो, किंतु भारत की प्रायः सभी जातियों में इस सिद्धांत ने गहरा प्रभाव डाला है| अपने किए हुए कर्म का फल उसे भोगना है, यह मानकर चलने पर प्रत्येक अपनी जातिगत सामाजिक स्थिति से विद्रोह नहीं करता| कर्म का यह सिद्धांत धीरे धीरे इस देश के सभी निवासियों पर अपना प्रभाव किसी न किसी रूप में होता रहता है| इसी को व्यक्त करने के लिए प्रस्तुत कहानी में सन्यासी बीच-बीच में कहता है कि मनुष्य जैसा बोता है, फसल भी वैसी काटती है| मानव, अपने मूल्यों को लेकर आगे बढ़ना है, इसकी प्रेरणा हमें प्रस्तुत कहानी से मिलता है| परोपकार की भावना, भाईचारा, करुणा, अहिंसा, अपनी गलती पर पछताने का मन आदि गुण से व्यक्ति कभी कभी देवता बन जाता है| हम ईश्वर पर विश्वास रखनेवाला है, हमारा विश्वास यह है कि ईश्वर ही हमारा मालिक है| यदि कोई भूल करेगा तो उसका बदला चुकाने का अधिकार मात्र ईश्वर को है|

इस प्रकार देखे तो यह पता चलता है कि आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की छोटी छोटी कहानियाँ भी भारतीय संस्कृति पर आधारित है| हमारे विश्वासों को

[117] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली खण्ड 11, पृ : 147

ज़ोर से पकड़ते हुए ही उन्होंने अपनी रचनाओं का सृजन किया है| वर्तमान समाज में नैतिक मूल्यों को बनाये रखने के लिए वे कभी कभी मिथकों को भी अपनाते हैं|

इस प्रकार आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास तथा कहानियों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि उनके चारों उपन्यासों में इतिहास, संस्कृति तथा मिथकों का समावेश अवश्य है| 'बाणभट्ट की आत्मकथा', हर्षकालीन समय की रचना है, ऐतिहासिक दृष्टि से यह सफल उपन्यास है| भारतीय संस्कृति को उजागर करने लायक पात्र इसमें विद्यमान है| कुछ कल्पित कथाओं का सन्निवेश, प्रस्तुत उपन्यास को रोचक बना दिया है| 'पुनर्नवा' गुप्तकालीन भारतवर्ष की कहानी है| प्रस्तुत उपन्यास में परंपरा और नवीन मूल्यों के बीच द्विवेदी ने अपना स्पष्ट दृष्टिकोण रखा है| 'पुनर्नवा' के पात्र एक ओर प्राचीनता से पाठकों को करता है तो दूसरी और नवीन दृष्टिकोण से पाठकों को प्रेरणा देते हैं| उज्जयिनी के प्रसंग में तथा अन्य कई संदर्भो में भारतीय संस्कृति की मनोहारिता का चित्रण पुनर्नवा में हुआ है| सामाजिक संदर्भो को व्यक्त करने के लिए प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी ने मिथकों को अपनाया है| 'चारुचन्द्र लेख' में 12 वीं शताब्दी के ऐतिहासिक घटना का चित्रण है प्रस्तुत उपन्यास में उनके अधिकांश पात्र ऐतिहासिक है| जातीय चिंतन तथा दार्शनिक विचारों का इस उपन्यास में प्रमुख स्थान दिया गया है| इसलिए ही साँस्कृतिक दृष्टि से यह सफल उपन्यास सिद्ध होता है| 'चारुचन्द्र लेख' तांत्रिक साधनाओं को लेकर लिखा गया पहला उपन्यास है| प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा द्विवेदी कल्पित पात्रों के माध्यम से योगियों और सिद्धों का विरोध करते हुए अत्यचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने की प्रेरणा देते हैं| 'अनामदास का पोथा' का विश्लेषण करने से पता चलता है कि इसका आधार उपनिषद है| इसलिए ही आध्यात्मिक का भरपूर वर्णन इसमें अधिक हुआ है| इसमें ऐतिहासिक तत्व कम है| काल्पनिक पात्रों के माध्यम से द्विवेदी ने निराशा ग्रस्त मानव को जीने की प्रेरणा दी है| प्रस्तुत उपन्यास

में 'आध्यात्मिकता' नामक साँस्कृतिक तत्व, जो भारतीय संस्कृति का मेरुदंड है, विद्यमान है| इसमें लौकिक युवती के प्रेम-कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्याख्या करने की चेष्टा उपन्यासकार ने की है| दर्शन और जीवन को एक साथ जोड़कर ही उन्होंने प्रस्तुत उपन्यास की रचना की है|

आचार्य द्विवेदी की कहानियों को उपन्यास की अपेक्षा बहुत कम ही प्रधानता मिली है| फिर भी उनकी कहानियाँ, उनके व्यक्तित्व से मेल खाते हैं| द्विवेदी के मानवतावादी दृष्टिकोण की झलक उनकी कहानियों में पाई जाती है| नैतिक मूल्यों के प्रति उनका जो दृष्टिकोण है, उसका चित्रण इन कहानियों में हुआ है| उनकी कहानियाँ बिलकुल प्रासंगिक भी है| द्विवेदी की कहानियों विश्लेषण करने से सिद्ध होता है कि इतिहास, संस्कृति तथा मिथक की दृष्टि से उनकी कहानियों का महत्व कम है|

आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के कथा साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन से पता चलता है कि उनका कथा साहित्य इतिहास, संस्कृति एवं मिथक के प्रमुख तत्वों पर आधारित है| 'बाणभट्ट की आत्मकथा' घटना, देशकाल एवं, लोकजीवन आदि तत्वों से संपूर्ण है| साथ ही साथ धर्म, वर्ण, संस्कार, कल्पना, जिज्ञासावृति आदि तत्व भी इसमें शामिल है| 'चारुचन्द्रलेख' और 'पुनर्नवा' में भी ये तत्व विद्यमान है| 'अनामदास का पोथा' में दार्शनिकता का बोझ अधिक है| इतिहास, धर्म, दर्शन आध्यात्मिकता, मानव जीवन की पुनर्व्याख्या का भाव आदि उनके इस उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप में पाई जाती है| द्विवेदी के उपन्यासों को गहराई से देखने पर पता चलता है कि इतिहास, संस्कृति एवं मिथक के तत्वों का इसमें प्रयोग हुआ है और इसलिए उनकी जो 'मानववाद' की आकांक्षा एवं उद्देश्य है वह सफल निकले हैं|

.....ooo.....